आत्मधर्म
मासिक : वर्ष-१८ * अंक-१० * जून-२०२४

कौन कर्ता और क्या उसका कार्य ?

(१) धर्मी जीव कर्ता और निर्मल अवस्था वह उसका कार्य।

(२) अधर्मी जीव कर्ता और विकारी अवस्था उसका कार्य।

(३) जड़-पुद्गल कर्ता और जड़ की अवस्था उसका कार्य।

(१) धर्मी जीव विकारीभावोंका व शरीरादि जड़की क्रियाका कर्ता होता नहीं है।

(२) अधर्मी जीव विकारका कर्ता होता है और जड़ शरीरादिकी क्रिया मैं करता हूँ—ऐसा मानता है, लेकिन जड़के कार्यको वह कर सकता नहीं है।

(३) शरीरादि जड़ पदार्थों आत्माकी अवस्था में विकार करवाते नहीं, और धर्म भी कराते नहीं है।

इस प्रकार कर्ता-कर्मका स्वरूप समझकर, शरीरादि जड़ पदार्थोंके कार्यका मैं कर्ता—यह मान्यताका त्याग करना और क्षणिक विकारका मैं कर्ता और वह मेरा कार्य—ऐसी बुद्धि छोड़कर, त्रिकाली निर्विकार चैतन्यस्वभावकी दृष्टिसे निर्मल अवस्थारूपी कार्य प्रगट करना—उसका नाम धर्म है, धर्मी जीव उसका कर्ता है।

—पुरुषार्थ प्रेरणामूर्ति पूज्य गुरुदेवश्री

आगम महासागरके अमूल्य रत्न

• यही आत्मा निश्चयनयसे परमात्मा है। व्यवहारनयसे अनादि कर्मोंके बंधनके कारण यह पराधीन होकर दूसरोंका जाप करता है परन्तु जब यह निश्चयसे अपने आत्माको जाने तो यही परमात्मा देव है। जो परमात्मा ज्ञानस्वरूप है वही मैं अविनाशी देव हूँ, जो मैं हूँ सो ही उत्कृष्ट परमात्मा है। इस तरह तू निःशंक होकर भावना कर। हे जीव! जैसे निर्मल स्फटिकमणिसे उसके नीचे लगे सभी दाग भिन्न है वैसे ही इस आत्माके स्वभावसे सर्व ही शुभ व अशुभ कर्मके स्वभाव भिन्न है, ऐसा मान।४२।

(श्री तारणस्वामी, ममलपाहुड, भाग-२, पानु-२०२)

• हे योगिन्! मोक्ष प्राप्त करनेमें शुद्धात्मा और जिन भगवानमें कुछ भी भेद न समझो, यह निश्चय मानो।४४। (श्री योगीन्द्रदेव, योगसार, गाथा-२०)

• मेरा आत्मा निश्चयसे अपने ही स्वभावमें रहता है। मेरा आत्मा ही परमात्मारूप है। इसी भावसे रागका क्षय हो जाता है तथा वीतराग शुद्ध केवल ज्ञानमय स्वभाव झलक जाता है। फिर शेष कर्मोंको क्षय करके यह निर्वाण चला जाता है।४५।

(श्री तारणस्वमी, उपदेश शुद्धसार, श्लोक-५३३)

• जैसा केवलज्ञानादि प्रगटस्वरूप, कार्यसमयसार, उपाधिरहित, भावकर्म-द्रव्यकर्म-नोकर्मरूप मलसे रहित, केवलज्ञानादि अनंतगुणरूप, सिद्ध परमेष्ठी देवाधिदेव, परम आराध्य मुक्तिमें रहता है, वैसा ही सब लक्षणों सहित परब्रह्म, शुद्धबुद्ध, एकस्वभाव परमात्मा, उत्कृष्ट शुद्ध द्रव्यार्थिकनयकर शक्तिरूप परमात्मा शरीरमें तिष्ठता है, इसलिए हे प्रभाकर भट्ट! तू सिद्ध भगवानमें और अपनेमें भेद मत कर।४६।

(श्री योगीन्द्रदेव, परमात्मप्रकाश, अधि-१, गाथा-३२०)

• जैसे नेत्र (दृश्य पदार्थोंका कर्ता, भोक्ता नहीं, देखता ही है) वैसे ही ज्ञान अकारक तथा अवेदक है और बंध, मोक्ष, कर्मोदय तथा निर्जराको जानता ही है।४७।

(श्री कुन्दकुन्दाचार्य, समयसार, गाथा-३२०)

• 'शुद्ध निश्चयनयसे मुक्तिमें और संसारमें अंतर नहीं है' ऐसा ही वास्तवमें, तत्त्व विचारने पर (परमार्थ वस्तुस्वरूपका विचार अथवा निरूपण करने पर) शुद्धतत्त्वके रसिक पुरुष कहते हैं।४८। (श्री पद्मप्रभमलधारिदेव, नियमसार-टीका, श्लोक-७२)

वर्ष-18
अंक-10

आत्मधर्म

शाश्वत सुखका मार्ग दर्शानेवाली मासिक पत्रिका

वि. संवत 2080
June
A.D. 2024

श्रुतपंचमी और हमारी भावना

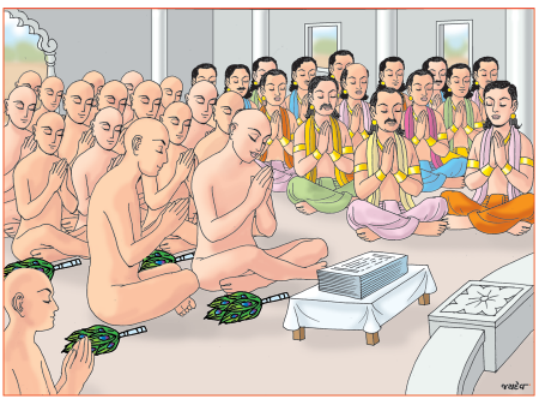

ज्येष्ठ शुक्ल ५ के दिन श्रुतपंचमीका महामंगल दिन है। सत्श्रुतकी आराधना द्वारा आत्मामें सम्यक् श्रुतज्ञान प्रगट करके एकावतारीपना प्रकट करना वह ही मंगल है।

'श्रुत' कहते ही लोगोंकी दृष्टि बाह्य शास्त्रों पर जाती है, शास्त्रोंको लिखनेसे श्रुतको विद्यमान मानते है, लेकिन श्रुत वह तो ज्ञान है और ज्ञान तो आत्माके आश्रयसे है–ऐसी अंतरदृष्टि कोई विरल व्यक्ति ही करता है।

प्रश्न :–भरतक्षेत्रमें अभी कितना श्रुतज्ञान विद्यमान है !

उत्तर :–भरतक्षेत्रमें विचरण करते सम्यग्ज्ञानी जीवोंमें जिस जीवके श्रुतज्ञानका क्षयोपशम सर्वसे अधिक होता है उतना श्रुतज्ञान विद्यमान है और शेष सभी विच्छेद है। चाहे शास्त्रमें शब्द लिखे हुए विद्यमान हो, लेकिन उनका आशय समझानेवाला कोई जीव विद्यमान न हो तो वह विच्छेदरूप ही है। अर्थात् 'श्रुत' आत्माके आश्रयसे विद्यमान है, अपितु शब्दों के आधार से।

सम्यग्ज्ञानी जीव श्रुतकी साक्षात् मूर्ति है, ऐसे जीवोंकी वाणीकी उपासना वह श्रुतकी ही उपासना है। श्रुतज्ञानी जीवकी वाणी वह ही श्रुतका प्रत्यक्ष निमित्त है। साक्षात् श्रुतकी मूर्ति ऐसे सम्यग्ज्ञानी पुरुषके पाससे ही सत्श्रुतकी प्राप्ति होती है। एक बार भी साक्षात् श्रुतज्ञानीके पाससे सत् सुने बिना मात्र शास्त्रमेंसे स्वयं कोई भी जीव सत् समझ सकता नहीं है। यदि वर्तमान ऐसे श्रुतज्ञानीका सत्समागम न हुआ हो तो पूर्वमें किये हुए श्रुतज्ञानीके

समागमके संस्कार स्मरण आना चाहिये। लेकिन श्रुतज्ञानीका उपदेश सुने बिना किसी भी जीवको सम्यग्दर्शन होता ही नहीं है ।

श्रुतज्ञानका प्रयोजन शुद्धात्माको जाननेका ही है; श्रुतज्ञान द्वारा जो जीव स्वयंके शुद्धात्माको जानता है उनको केवलीभगवान 'श्रुत केवली' कहते है; ऐसा समयसारजीमें कहा है। क्योंकि बारह अंग और चौदहपूर्वका साररूप जो शुद्धात्मा जिसने पहचान लिया इसलिये वह (दर्शन अपेक्षासे) श्रुतकेवली है। कुछ शास्त्रोंको जाने वह श्रुतकेवली—यह व्याख्या (ज्ञान अपेक्षासे) है, लेकिन सभी शास्त्रोंका सार शुद्धात्मा है उसे जाने वह श्रुतकेवली है—यह व्याख्या (दर्शन अपेक्षासे) है । ऐसे निश्चय-श्रुतकेवली आत्माएँ अभी इस भरतक्षेत्रमें दुर्लभ है लेकिन कहीं कहीं देखे जा सकते है। भरतक्षेत्रके भव्यजीवोंको ऐसे दुर्लभ श्रुतज्ञानीओंके पाससे सत्श्रुतकी प्राप्ति करनेका सौभाग्य अभी मिल रहा है—और अच्छिन्नरूपसे रहनेका है।

आज भरतक्षेत्रमें बारह अंग-चौदह पूर्वके ज्ञाता विद्यमान नहीं है, तदपि बारह अंग और चौदहपूर्वका एकमात्र प्रयोजन जो शुद्धात्माका ज्ञान उसके धारक श्रुतज्ञानी तो आज भी विद्यमान है। उस श्रुत द्वारा एकावतारी भी हुआ जा सकता है। बारह अंग चौदहपूर्वके ज्ञाताओंको जैसा शुद्धात्माका ज्ञान था वैसा ही शुद्धात्माका ज्ञान आज भी श्रुतज्ञानीओंको है और प्रगट हो सकता है।—यह स्वात्माके श्रुतज्ञानकी अपेक्षासे उन दोनोंमें कोई बदलाव नहीं है। बारह अंग चौदहपूर्वके ज्ञाता श्रुतज्ञानीओं जैसा शुद्धात्माको जानते थे, वैसा ही शुद्धात्माका ज्ञान आज भी हो सकता है। इसलिये भव्यजीवों अंतरंगमें प्रमोद करो कि आज भी सत्श्रुत जयवंत वर्तता है!

—यह हुई निश्चय श्रुतकी बात। निश्चय श्रुत अर्थात् श्रुतज्ञान द्वारा शुद्धात्माका ज्ञान। इस शुद्धात्माका ज्ञान तो पंचमकालके अंत तक अविच्छिन्नरूपसे रहनेका है, उसका अल्प भी विच्छेद नहीं है ।

अब व्यवहार श्रुतज्ञानकी अपेक्षा देखते है तो अभी श्रुतका एक बड़ा भाग विच्छेद हो गया है और उसका अंश विद्यमान है । आज बारह अंग चौदहपूर्वके ज्ञाता तो नहीं है लेकिन एक अंगके भी पूर्णरूप ज्ञाता नहीं है.... फिर भी—आज हमारे पास श्रुतका जो अल्प अंश विद्यमान है वह सर्व परंपरासे अविच्छिन्नरूपसे आया हुआ होनेसे उसका बिंदु भी सिन्धुका कार्य करता है।

आज जो पवित्र सत्श्रुत विद्यमान है उसमें 'श्रीषट्खंडागम' सबसे प्राचीन और सर्वज्ञ

परम्परासे चला आ रहा है। हमारे सौराष्ट्र देशमें गिरनार पर्वतकी चन्द्रगुफामें एक महामुनि धरसेनाचार्य ध्यान करते थे। वे अंग और पूर्वके एकदेशके ज्ञाता थे। वे महा विद्वान और श्रुतवत्सल थे। एकबार उनको ऐसा भय उत्पन्न हुआ कि अब अंग-श्रुतका विच्छेद हो जायेगा...इसलिये उन्हें विकल्प उत्पन्न हुआ कि श्रुतज्ञान अविच्छिन्नरूप जयवंत रहो!...और श्रुतका अविच्छिन्नरूप वहन कर सके ऐसे पुष्पदंत आचार्य और भूतबलि आचार्य यह दो समर्थ मुनिराजों धरसेनाचार्यके पास आये, उनको आचार्यदेवके पाससे जो श्रुत मिला उसे उन्होंने पुस्तकारूढ किया और करीब २००० वर्ष पूर्व ज्येष्ठ शुक्ल ५ के दिन उसे पुस्तक (षट्खंडागम)की श्री भूतबलि आचार्यदेवने चतुर्विध संघ सहित पूजा की थी। तबसे इस तिथिको श्रुतकी पूजा और महोत्सव मनाया जाता है और वह दिन श्रुतपंचमीके रूपमें प्रसिद्ध है। जैनशासनमें प्रथम लिपिबद्ध षट्खंडागमको किया गया है। आचार्य भगवंतोंकी परमकृपासे उस पवित्र श्रुतका लाभ आज भी हमें मिल रहा है।

तत्पश्चात् अध्यात्म शास्त्रोंकी रचना हुई। आजसे करीब २००० वर्ष पूर्व महा समर्थ आचार्य भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेवने समयसार आदि अध्यात्म शास्त्रोंकी रचना की उसमें सर्वज्ञदेवकी दिव्यवाणीका रहस्य समाहित कर दिया है और उस अपूर्व श्रुतकी प्रतिष्ठा द्वारा उन्होंने बारह अंग और चौदह पूर्वके विच्छेदको भूला दिया।

इस प्रकार, जैसे निश्चय श्रुतज्ञान आज अविच्छिन्नरूप वर्तता है वैसे, व्यवहार श्रुत (द्रव्यश्रुत) भी अविच्छिन्नरूप वर्त रहा है। लेकिन—आज हमारे पास विपुल श्रुतभंडार शास्त्रके रूपमें विद्यमान होने पर भी,—उसका अंतरंग मर्म तो श्रुतज्ञानी पुरुषोंके हृदयमें भरा हुआ है। एकावतारी ज्ञानी पुरुष श्रीमद् राजचंद्रजी कह गये है कि शास्त्रमें मार्ग कहा है किन्तु उसका मर्म ज्ञानीको सौपा है अर्थात् मात्र शास्त्र वांचनसे मर्म नहीं समझमें आयेगा लेकिन ज्ञानीके समागमसे शास्त्रका मर्म समझमें आयेगा और सत्श्रुतकी प्राप्ति होगी।

णवी होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो जाणओ दु जो भावो।
एवं भणंति सुद्धं णाओ जो सो उ सो चेव ॥६॥

सत्श्रुतके इस एक ही सूत्रमें भरे बारह अंग और चौदह पूर्वके मूलभूत रहस्योंको तो साक्षात् श्रुतमूर्ति ज्ञानीओं ही प्रकट कर सकते है। आज ऐसे श्रुतमूर्ति सद्गुरुदेवके पाससे हमें जो श्रुतका रहस्य मिला है जो हमारा परम सौभाग्य है...ऐसे श्रुतमूर्तिकी उपासना द्वारा हमें भी सत् श्रुतकी शीघ्र प्राप्ति हो...और.... आत्म हितकारी सत्श्रुत सदा जयवंत रहकर जगतका कल्याण करो—यह ही मंगल भावना!!!

श्री समयसारजी शास्त्र पर पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रवचन

(समयसार गाथा–३२०) (गतांकसे आगे)

* बंध-मोक्षके कारणको अथवा परिणामको न करे वह जीव *

जिनवरदेव ऐसा कहते है कि बंध और मोक्षके कारणके परिणामको निश्चयसे जीव करता नहीं है। परमार्थसे निश्चय जीव केवलज्ञान हो उसमें उत्पन्न होता नहीं है और व्यय होता है उसमें तो वह आता नहीं है, मनुष्यगतिरूप उत्पाद और देवगतिका व्यय तथा देवगतिका उत्पाद और मनुष्यगतिका व्यय यह दोनोंमें भगवान आत्मामें आता नहीं है, वह तो निजानंद ध्रुव प्रभुमें आता है।

श्री योगीन्द्रदेव अपने शिष्यको कहते है कि हे योगी ! अर्थात् स्वरूपकी पर्यायको द्रव्यसन्मुखमें लगी है ऐसे हे योगी ! जिनवरदेव ऐसा कहते है कि बंध और मोक्षके परिणाममें ध्रुव-जीव आता नहीं है। यह ध्रुव तो सम्यग्दर्शनका विषय है। सर्वज्ञ परमेश्वर कहते है कि जो निश्चय आत्मा है उसकी अपेक्षासे पर्याय वह व्यवहार आत्मा है, त्रिकालकी अपेक्षासे पर्याय एक समयकी होनेसे उसे गौण करके असत् कहनेमें आती है। और त्रिकाली वस्तुको सत्यार्थ-भूतार्थ कहनेमें आयी है।

उसे विशेष स्पष्ट करते है कि त्रिकाली द्रव्यके लक्ष से अनंतकालमें नहीं हुआ ऐसा अपूर्व सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र हुआ है वह एकदेशशुद्धनयाश्रित और केवलज्ञान है वह सर्वदेशशुद्धनयाश्रित है। वीतरागी दशा है वह एकदेशशुद्धनयाश्रित भावना है, वह एकदेश शुद्धिका अंश है। पूर्ण शुद्धि नहीं है पूर्ण शुद्धि तो केवलीको होती है।

जीव कि जिसे निश्चय आत्मा कहा है, एक समयकी पर्याय बिनाका त्रिकाली द्रव्य-स्वभाव उसे कहते है कि वह सिद्धकी पर्यायरूप भी उत्पन्न होता नहीं और मनुष्य आदि गतिकी पर्यायका व्यय होता है उसमें भी वह आता नहीं है। सम्यग्दर्शनका विषय त्रिकाली ध्रुव वस्तुको यहाँ सिद्ध करना है।

दृग्ज्ञान-लक्षित और शाश्वत मात्र–आत्मा मम अरे ।
अरु शेष सब संयोग लक्षित भाव मुझसे है परे ॥१०२॥

परमागम
श्री नियमसार

आत्मा त्रिकाली ध्रुव वस्तु है। उसकी प्राप्ति पर्यायमें होती है, वह पर्याय ध्रुवमें नहीं है। वह पर्याय अर्थात् वीतरागी सहजानंद सुखानुभूतिलक्षण स्वसंवेदनज्ञान उससे आत्मा जाननेमें आता है। ध्रुवसे ध्रुव जाननेमें आता नहीं क्योंकि जाननेकी पर्यायका तो ध्रुवमें अभाव है। ऐसा ध्रुव है वह उत्पन्न होता नहीं है, मरता नहीं, बंध-मोक्षको करता नहीं, उसे आत्मा कहते है। निश्चय आत्मा कि जो एक समयकी पर्याय रहित है वह बंध-मोक्षको करता नहीं है।

सुखानुभूतिलक्षण स्वसंवेदनज्ञानमय उपशम आदि भाव

पुनश्च उसे स्पष्ट करनेमें आता है : विवक्षित-एकदेश-शुद्धनयाश्रित यह भावना (अर्थात् कहनेरूप धारण की हुई आंशिक शुद्धिरूप यह परिणति) निर्विकार-स्वसंवेदनलक्षण क्षायोपशमिकज्ञानरूप होनेसे जो एकदेश व्यक्तिरूप है तदपि ध्याता पुरुष ऐसी भावना करता है कि 'जो सकलनिरावरण-अखंड-एक-प्रत्यक्षप्रतिभासमय-अविनश्वर-शुद्धपारिणामिकभावलक्षण निजपरमात्मद्रव्य वह ही मैं हूँ', लेकिन ऐसी भावना करता नहीं है कि 'मैं खंडज्ञानरूप हूँ'–ऐसा भावार्थ है।

यह व्याख्यान परस्पर सापेक्ष ऐसे आगम-अध्यात्मके और नयद्वयके (द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिकनयके) अभिप्रायके अविरोधपूर्वक ही कहनेमें आया होनेसे सिद्ध है (-निर्बाध) ऐसा विवेकीओंने कहा जानना। –गुजराती टीका

पुनः उसे स्पष्ट करते है कि विवक्षित –कहनेमें आया जो एकदेश-एकभाग शुद्धनयाश्रित ऐसी भावना अर्थात् कि परमानंदस्वरूप त्रिकालीको प्राप्त करनेवाली यह पर्याय कि जिसमें ध्रुव वस्तु जाननेमें आती है वह पर्याय कैसी है?–कि वीतरागी आनंदके लक्षणवाली स्वसंवेदनदशा वह एकदेशशुद्धनयाश्रित भावनारूप दशा है। कही हुई आंशिक निर्मल परिणति कि जो प्रगट पर्याय है वह एकदेशशुद्धनयाश्रित भावना है। वह भावना कि जो मोक्षका मार्ग है उसमें ज्ञान कैसा है?–कि निर्विकार-स्वसंवेदन लक्षणवाला क्षयोपशमज्ञान है। मोक्षमार्गकी पर्याय उपशम-क्षयोपशम-क्षायिक यह तीन भाव है लेकिन उसमें ज्ञान कैसा है?–कि उसमें उपशमज्ञान-क्षयोपशमज्ञान-क्षायिकज्ञान है ऐसा नहीं लेकिन वह तीन भावोंमें जो ज्ञान है वह निर्विकार-स्वसंवेदन लक्षणवाला क्षयोपशमज्ञान है।

(शेष देखे पृष्ठ २९ पर)

जो कोइ भी दुष्चरित मेरा सर्व त्रयविधिसे तजूँ।
अरु त्रिविध सामायिक चरित सब, निर्विकल्पक आचरूँ ॥१०३॥

श्री इष्टोपदेश पर पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रवचन

प्रवचन नं.-३४ (गाथा-२९)

परकी ममता छोड़कर स्वमें समता करनेका अभ्यास कर !

श्री पूज्यपादस्वामी रचित इष्टोपदेश शास्त्र चलता है। उसमें २९वीं गाथा चलती है।

मैं एक, शुद्ध, ध्रुव, अजर-अमर, अनादि-अनंत एक जीववस्तु हूँ ऐसी दृष्टि रखनेवाले सम्यग्दृष्टि स्वयंका मरण या रोगादिको अपना मानता नहीं है।

ज्ञानी ऐसा विचारता है कि अनंत ज्ञान-दर्शनसे परिपूर्ण मैं एक हूँ; मेरी वस्तु परके ममत्वसे रहित है। शरीरकी क्रियाएँ या शुभाशुभभावकी क्रियासे मैं पृथक् हूँ। मैं ज्ञायक, चिदानंद प्रभु एक समयमें अनंती शक्ति सहित शुद्ध हूँ।

पुनश्च ज्ञानी विचार करते हैं कि मैं अनादि-अनंत अमर हूँ। मेरे स्वरूपका कभी मृत्यु होता नहीं है। आनंदघनजी कहते है कि :

अब हम अमर भये न मरेंगे
या कारन मिथ्यात्व दियो तज, क्यों कर देह धरेंगे
अब हम अमर भये न मरेंगे... (२)

ज्ञानीको शरीर, विकल्प, पुण्य-पाप आदि मेरे है ऐसा विपरीत अभिनिवेशरूप मिथ्यात्वका त्याग किया तो फिर उसे देह कहाँसे होगा ? देहका जन्म वह तो संयोगी वस्तु है। जीवके स्वरूपमें देहका ग्रहण करना है ही नहीं। मैं तो शुद्ध ज्ञानानंदस्वरूप नित्य वस्तु हूँ। ऐसी ज्ञानीको श्रद्धा होनेसे मरणभय छूट गया है।

पांच इन्द्रियप्राण, श्वासोच्छ्वास प्राण, आयुष्यप्राण, शरीरप्राण ये सभी जड़के प्राण है। ये मेरे प्राण नहीं है। मेरे प्राण तो ज्ञान, आनंद, शांति और सत्ता है। मैं तो अनादि अनंत जीवतरशक्तिसे जीनेवाला-जीवत्वशक्तिसंपन्न भगवान हूँ। मेरे प्राणका नाश कदापि होता नहीं है और जड़प्राण मेरे है नहीं तो उनके नाशसे मेरा नाश कैसे हो ? नहीं होता है।

ज्ञानी कहते है कि मेरा प्राणत्यागरूप मरण कदापि होता नहीं है क्योंकि चित्शक्तिरूप मेरे भावप्राणका विच्छेद कदापि होता नहीं है। मैं तो ज्ञान-दर्शन आदि अनंत शक्तिसंपन्न

समता मुझे सब जीव प्रति वैर न किसीके प्रति रहा ।
मैं छोड़ आशा सर्वतः धारण समाधि कर रहा ॥१०४॥

हूँ। उसका मेरेसे कदापि विच्छेद होता नहीं है। इस प्रकार जहाँ मेरी मृत्यु ही नहीं तो फिर मुझे किसका भय? ''दुनियाको मृत्युका डर है, तो ज्ञानीको आनंदकी लहेर है''। मृत्यु पूर्व ही जिसने देह और आत्माको पृथक् जान लिया हो उसे मृत्युका भय कैसा? शरीरका तो संयोग है उसका वियोग होता है। उससे मुझे कोई मेरा जन्म-मरण नहीं है।

इस प्रकार, धर्मी स्वयंके चैतन्यस्वभावको जन्म-मरण रहित असंग जानता है और अनुभव करता है तो फिर ज्ञानीको मृत्युके कारणरूप काला नाग आदिका भय कैसे हो? सिंह-बाघ आदि आये तो आये, वे किसको खायेंगे? मैं तो अरूपी हूँ, मेरा भक्षण करनेवाला तो जगतमें कोई नहीं है। मेरी शाश्वत वस्तुका खंड, छेद या भंग कभी तीनकालमें होता नहीं है, तो मुझे किसका भय! श्रीमद्जी कहते हैं कि :

एकाकी विचरतो वळी स्मशानमां,
वळी पर्वतमां वाघ-सिंह संयोग जो,
अडोल आसन ने मनमां नहि क्षोभता,
परम मित्रनो जाणे पाम्या योग जो।
अपूर्व अवसर ऐसा किस दिन आयेगा।

श्रीमद् राजचंद्र गृहस्थाश्रममें थे फिर भी ऐसी भावना भाते थे। लाखों रुपियोंका मोतीका व्यापार था। ७ वर्षमें जातिस्मरणज्ञान हुआ था फिर सम्यग्ज्ञान हुआ और ३३ वर्षमें देह छूट गया। उन्होंने यह भावना भायी थी।

जिन्होंने देहसे भिन्न चैतन्यका ध्रुव तारा अंतरमें देख लिया है। जान लिया है, अनुभवमें ले लिया है ऐसे धर्मीको मृत्युका डर कदापि होता नहीं है। धर्मीको अभिप्रायमें दृढ़ हो गया है कि मैं तो ज्ञान-दर्शनादि अनंत चैतन्यप्राणसे जीवित हूँ। मेरे चैतन्यमें विकल्प या रागका भी प्रवेश नहीं तो अन्य कौन मुझे खा जायेगा या मार डालेगा? धर्मीको अंतरमें ऐसा निडरभाव होता है।

धर्मीको मृत्युभय नहीं और रोगभय भी नहीं है। वात-पित्त-कफ आदि रोगोंसे धर्मी डरते नहीं है। क्योंकि वे जानते है कि मुझमें पुद्गल पर्यायकी व्याधिका अत्यंत अभाव है।

जो शूर एवं दान्त है, अकषाय उद्यमवान है।
भव-भीरु है, होता उसे ही सुखद प्रत्याख्यान है ॥१०५॥

स्वभावका संग करनेसे अर्थात् शुद्ध चैतन्यभावका लक्ष करनेसे पर्यायमें शांति और आनंद मिलता है और जितना परसंग है–परलक्ष है उतनी आकुलताके दुःख समूहको भोगना पड़ता है। वह आत्माका रोग है, अरे ! जगतके परसंयोगमें कैसे आनंद आता होगा ? धर्मी तो आत्मामें आनंद मानते है, बाह्यमें कहीं आनंद मानते नहीं है। चाहे लाख और करोड़ रुपये हो वह धूल है। जहाँ शरीर ही धूल है तो धन तो धूल ही है उसमें आनंद कैसा ?

गर्मीमें पित्त बहुत होता है न ! लोगोंको बैचेनी होती है, किन्तु प्रभु ! तेरे स्वरूपकी शांतिमें यह पित्तका प्रकोप कहाँसे आया ? मैं तो शांतिका सागर हूँ ऐसी दृष्टिवाला धर्मी मुझे पित्त हुआ ऐसा मानते नहीं है। जड़की किसी भी पर्यायको धर्मी अपनी मानते नहीं है तो उसका मुझे दुःख है ऐसा कैसे माने ? इसलिये केन्सर, भगंदर, कंठमाल, हेमरेज, क्षय आदि किसी भी रोग को धर्मी स्वयंका मानते नहीं है। रोगका संबंध तो शरीरके रजकणके साथ है। आत्माके साथ उसका संबंध नहीं है।

भगवान आत्मा तीनकाल सर्व परद्रव्यसे निराला, पुण्य-पाप और रागसे भी निराला है ऐसी दृष्टि हुए बिना कभी भी जन्म-मरणका अंत आनेवाला नहीं है।

सातवीं नरकके नारकीको जन्मसे १६ बड़े रोग होते है, पीड़ाकी सीमा नहीं है, उसके बीच भी पूर्वमें सुनी हुई बात ''भगवान ! तू शांतिका सागर है, परद्रव्य परभावसे निराला है।'' ऐसी याद आने पर जैसे बीजली तांबेके तारमें तुरंत ऊतर जाती है वैसे नरककी इतनी पीड़ाके बीच भी स्वभावकी दृष्टि होने पर भी वीर्य अंतरमें उतरने पर आनंदका अनुभव होता है। यहाँ तो अज्ञानी अल्प पीड़ामें शोर मचा देता है उसको मुनिराज कहते है कि अरे भगवान् ! सातवीं नरकमें भी आत्माका अनुभव कर सकता है तो तुझे कोई दुःख नहीं है तो तू ऐसे आत्माका अनुभव नहीं कर सकता ?

धर्मी स्वयंको बाल, युवान, वृद्धावस्था रहित जानता है। बालादि अवस्थाएँ नहीं है ऐसा नहीं है लेकिन वह तो जड़ पुद्गलकी अवस्था है। मेरा चैतन्य उससे निराला है। तो उस अवस्थासे मुझे पीड़ा और दुःख कैसे हो ? जड़की वृद्धावस्थासे मुझे दुःख होता नहीं है। शरीरकी वृद्धावस्थासे मैं वृद्ध नहीं हूँ। ज्ञानकी वृद्धिसे मैं वृद्ध हूँ। चाहे ८ वर्षके बालकको केवलज्ञान हो जाय तो भी वह ज्ञानमें वृद्ध है। (क्रमशः) ✻

यों जीव कर्म विभेद अभ्यासी रहे जो नित्य ही।
है संयमी जन नियत प्रत्याख्यान-धारण क्षम वही ॥१०६॥

अध्यात्म संदेश

(रहस्यपूर्ण चिट्ठी पर परम पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रवचन)

साधकको निश्चय-सम्यक्त्व सदैव रहता है।

अब स्वानुभवदशा विषयक प्रत्यक्ष-परोक्षादि प्रश्नोंके उत्तर बुद्धि अनुसार लिख रहा हूँ। उसमें प्रथम ही स्वानुभवका स्वरूप जानने हेतु लिख रहा हूँ। जीवपदार्थ अनादिसे मिथ्यादृष्टि है; स्व-परके यथार्थरूपसे विपरीत श्रद्धानका नाम मिथ्यात्व है। पुनःश्च जिस कालमें किसी जीवको दर्शनमोहके उपशम-क्षयोपशमसे स्व-परके यथार्थ श्रद्धानरूप तत्त्वार्थश्रद्धान होवे तब वह जीव सम्यक्त्वी बनता है। अतः स्व-परके यथार्थ श्रद्धानमें शुद्धात्मश्रद्धारूप निश्चय सम्यक्त्व गर्भित है।

देखो, पहले तो सम्यक्त्वका स्वरूप बताते है, बादमें सम्यग्ज्ञानकी एवं स्वानुभव इत्यादिकी चर्चा करेंगे। यह तो लोकोत्तर चिट्ठी है, इसलिये इसमें कोई व्यापारधंधेकी या घर-परिवारकी बात नहीं आती है, इसमें तो स्वानुभव इत्यादिकी लोकोत्तर चर्चा भरी हुई है। इसके भाव जो समझ पाये, उसे उसकी कींमत समझ में आयेगी। जिस प्रकार कोई एक शाहुकार व्यापारी दूसरे शाहुकार पर खुले पोस्टकार्डमें चिट्ठी लिखे कि बाजारभाव से जरा ऊँचे भाव देकर भी एक लाख गठरी रुईकी खरीद कर लो। देखो, इस डेढ़ पंक्तिकी लिखाईमें तो कितनी बात समा जाती है। परस्पर दोनों व्यापारियोंका एक-दूसरेके ऊपर विश्वास, हिंमत, शाहुकारी (सज्जनता) व्यापारसे संबंधित ज्ञान यह सारी चीजें डेढ़ पंक्तिमें भरी हुई है। इसके जानकारको ही इसका पता लग सकता है, अनाड़ीको क्या समझ में आयेगा? उस प्रकार सर्वज्ञ भगवानने शास्त्ररूपी चिट्ठीमें संतोंके ऊपर धर्मका संदेश लिखा है, उसमें स्वानुभवके तथा स्व-परकी भिन्नता इत्यादिके अनेक गंभीर रहस्य भरे हैं। उस परसे उनकी सर्वज्ञता, वीतरागता एवं झेलनेवाले (ग्रहण करनेवाले)की ताकत–यह सब ख्यालमें आ जाता है। भगवानके शास्त्रमें भरे गूढ़ भावोंको ज्ञानी ही जानते हैं। अज्ञानीको उसके रहस्यका पता नहीं लग सकता, तथा रहस्य जाने बिना उसकी सच्ची महिमा आ नहीं सकती।

यहाँ साधर्मीके ऊपर चिट्ठी लिखनेमें स्वानुभवकी चर्चामें प्रथम ही सम्यग्दर्शनकी बात

नोकर्म, कर्म, विभाव, गुण पर्याय विरहित आतमा।
ध्याता उसे, उस श्रमणको होती परम-आलोचना ॥१०७॥

की है। सम्यग्दर्शनके बिना स्वानुभव हो नहीं सकता है। स्वानुभवपूर्वक ही सम्यग्दर्शनकी उत्पत्ति होती है। स्वानुभव यह एक दशा है, यह दशा जीवको अनादिसे नहीं हुई है, परंतु नयी प्रगट होती है। इस स्वानुभवदशाकी भारी महिमाका शास्त्रोंमें वर्णन किया गया है; स्वानुभव है वह मोक्षमार्ग है। स्वानुभवमें जो आनंद है ऐसा आनंद जगतमें अन्यत्र कहीं नहीं है। ऐसी स्वानुभवदशाका स्वरूप यहाँ कहेंगे।

इस जगतमें अनंत जीव हैं; प्रत्येक जीव चैतन्यमय है, परिपूर्ण ज्ञान व परिपूर्ण सुख प्रत्येक जीवके स्वभावमें भरा हुआ है। किन्तु अपने ऐसे स्वरूपको खुद देखता नहीं है– अनुभव करता नहीं है इसलिये अनादिसे वह मिथ्यादृष्टि है। अनादिसे अपने वास्तविक स्वरूपको भूलकर परभावोंमें ही तन्मय हो रहा है, जैसी स्व-परकी भिन्नता है वैसी उसे यथार्थरूपसे जानता नहीं है और विपरीत मान्यता रखता है, इसलिये परसे मेरेमें कुछ होता है तथा मैं पर में कुछ कर दूँ–ऐसी भीतर गहराईमें स्व-परकी एकत्वबुद्धि उसे बनी रहती है, ऐसी विपरीत श्रद्धाका नाम मिथ्यात्व है। देखो, यह विपरीत मान्यता जीव स्वयं ही अपने स्वरूपको भूलकर कर रहा है, एक-एक समय करते-करते अनादिकालसे स्वयं ही अपने अज्ञानके कारण मिथ्याभावरूप परिणमित हो रहा है।, किसी अन्य ने उसे मिथ्यात्व करा दिया है, ऐसा नहीं है। मिथ्यात्वकर्मने जीवमें मिथ्यात्व करा दिया, ऐसा जो मानता है उसे स्वपरकी एकत्वबुद्धि है। पूजनकी जयमालामें आता है कि 'कर्म बिचारे कौन, भूल मेरी अधिकाई। प्रभो ! मैं अपनी भूलकी अधिकतासे ही दुःख भोग रहा हूँ। निगोदका जो जीव अनादिसे निगोदमें रहा है वह भी अपने भावकलंककी अत्यंत प्रचुरताके कारण ही निगोद में रहा है : 'भावकलंक सुपउरा निगोयवासं ण मुंचई–'गोम्मटसार–जीवकांड : भाई, तेरी भूल तू जड़के सिर पर डाल देगा तो उस भूल से छुटकारा किस दिन हो पायेगा ? जीव तथा जड़ ये दोनों द्रव्य ही जहाँ अत्यंत भिन्न, दोनों की जाति ही भिन्न, दोनोंका परिणमन भिन्न, वहाँ एकदूसरेमें क्या करेंगे ? किन्तु ऐस वस्तुस्थितिको नहीं जाननेवाले जीवको स्व-परकी एकत्वबुद्धिका अथवा कर्ताकर्मकी बुद्धिका भ्रम अनादिसे चला आया है, वही मिथ्यात्व है और वही संसारदुःखका मूल है। यहाँ तो अब वह भ्रमरूप मिथ्यात्व किस तरह टल सकता है उसकी बात है।

कोई मुमुक्षु जब अंतरके पुरुषार्थसे स्व-परके यथार्थ श्रद्धानरूप तत्त्वार्थश्रद्धान करता

है शास्त्रमें वर्णित चतुर्विधरूपमें आलोचना।
आलोचना, अविकृतिकरण, अरु शुद्धता, आलुंछना ॥१०८॥

है तब वह जीव सम्यक्त्वी होता है। स्व क्या, पर क्या, स्वमें आत्माका शुद्ध स्वभाव क्या और रागादि परभाव क्या–इन सबको भेदज्ञान द्वारा एकदम ठीक प्रकारसे पहचान करके प्रतीति करनेपर सम्यक्त्व होता है। स्व-परके ऐसे यथार्थ श्रद्धानमें, शुद्धात्मश्रद्धानरूप निश्चय सम्यक्त्व गर्भित है। देखो, यह मूल बात है। स्व-परकी श्रद्धामें या देव-गुरु-शास्त्रकी श्रद्धारूप व्यवहार सम्यक्त्वके समय निश्चय सम्यक्त्व तो साथ ही साथ है ही। कोई कहता है कि निश्चय सम्यक्त्व चौथे गुणस्थानमें नहीं होता है। तो कहते हैं कि भाई, यदि निश्चयसमकित साथ ही साथ न हो, तो तेरे माने हुए अकेले व्यवहारको शास्त्रकार सम्यक्त्व कहते ही नहीं है। जिसे शुद्धात्मश्रद्धानरूप निश्चय समकित नहीं है वह जीव तो सम्यक्त्वी ही नहीं है, वह तो मिथ्यात्वी ही है। शुद्धात्माके श्रद्धानरूप निश्चय सम्यक्त्व होता है तब ही जीवको चौथा गुणस्थान प्रकट होता है और तभी उसको समकिती कहा जाता है। इसलिये कहते हैं कि सम्यग्दृष्टि जीवको स्व-परके यथार्थ श्रद्धानमें शुद्धात्मश्रद्धानरूप निश्चय सम्यक्त्व गर्भित है। गर्भित है इसका मतलब है उसके साथ ही वर्तता (रहता) है। और ऐसे जीवको निमित्तरूपमें दर्शनमोह कर्मका उपशम, क्षयोपशमका क्षय स्वयमेव होता है। अतः कथनमें निमित्तसे ऐसा भी कहा जाता है कि दर्शनमोहके उपशमादिसे सम्यक्त्व हुआ। परंतु वास्तवमें तो स्व-परके यथार्थ श्रद्धानका प्रयत्न जीवने किया तब सम्यक्त्व हुआ, जीव यथार्थ श्रद्धानका उद्यम न करे और कर्ममें उपशमादि हो जाय ऐसा बनता नहीं है। इसके अलावा यहाँ तो यह बताना है कि स्व-परकी श्रद्धामें शुद्धात्माकी श्रद्धा आ ही जाती है। शुद्धात्माकी श्रद्धा यह निश्चय सम्यक्त्व है, वह हो तो ही स्व-परकी या देव-गुरु-धर्मकी श्रद्धाको सच्ची श्रद्धा कहा जाता है। निश्चय बिनाके मात्र शुभरागरूप व्यवहारसे जीव समकिती नहीं कहा जाता है। निश्चय सम्यक्त्व हो उसे ही समकिती कहते हैं। यही बात अब कह रहे हैं। (क्रमशः) ✻

स्वानुभव है वह मूलवस्तु है। वस्तुस्वरूपका यथार्थ निर्णय करके मति-श्रुतज्ञानको अंतरमें झुकाकर स्वद्रव्यमें परिणामको एकाग्र करनेसे सम्यग्दर्शन व स्वानुभव होता है। ऐसा अनुभव करे तभी मोहकी गाँठ टूटती है, और तभी जीव भगवानके मार्गमें आता है।

समभावमें परिणाम स्थापे और देखे आतमा।
जिनवर वृषभ उपदेशमें वह जीव है आलोचना ॥१०९॥

अनुभवप्रकाश पर प्रवचन

(गतांकसे आगे)

❀ ज्ञेय अधिकार ❀

द्रव्यस्वरूपसत्ता, गुणसत्ता, पर्यायसत्ता—ऐसे तीन प्रकारसे सत्ता है। ज्ञेय ज्ञानमें ज्ञात होने योग्य वस्तु है; उसे ज्योंका त्यों जानना वह ज्ञानका धर्म है। आत्मा ज्ञान द्वारा अपने तथा परके द्रव्य–गुण पर्यायको जैसे हैं वैसे जानता है और ज्ञेयका ज्ञानमें ज्ञात होनेका स्वभाव है।

यह जगत ज्ञानमें ज्ञात होने योग्य वस्तु है। उसमें द्रव्यस्वरूपकी बात कहते हैं। चैतन्य चैतन्यरूपमें और जड़ जड़रूपमें ज्ञात होने योग्य द्रव्य हैं। अनन्त गुण जैसे हैं वैसे ज्ञान जानता है और तीसरा बोल पर्यायसत्ताका है। आत्माका स्वभाव जाननेका है। पर्याय सत् है उसे ज्ञान जानता है। परमाणुकी सुगंध या दुर्गन्ध पर्यायको ज्ञान जानता है। अच्छा–बुरापना पर्यायमें नहीं है। ज्ञानमें केवलज्ञानकी पर्यायसत्ता ख्यालमें आई, इसलिए केवली आदरणीय हैं, ऐसा ज्ञानस्वभाव नहीं है तथा ज्ञेयस्वभाव भी वैसा नहीं है। प्रतिमाकी पर्याय जड़की पर्याय है ऐसा ज्ञान जानता है। ज्ञेय ऐसा नहीं कहता कि मुझे मान, और ज्ञान भी अमुक पर्याय है, इसलिए आदरणीय है—ऐसा नहीं जानता। मुनिकी पर्याय सत्रूप है, केवलज्ञानीकी पर्याय सत् है—ऐसा ज्ञान जानता है, परन्तु वह पर्याय आदरणीय है—ऐसा ज्ञान नहीं जानता। मिथ्यात्वकी पर्याय हो या सिद्धकी पर्याय हो—वे सब जानने योग्य हैं। ज्ञानी दूसरेकी मिथ्यात्वपर्यायको जानता है, परन्तु इष्ट–अनिष्टपना ज्ञानमें नहीं है तथा ज्ञेयमें भी नहीं है। यह कस्तूरी है इसलिए इष्ट है, विष्टा है इसलिए अनिष्ट है—ऐसा इष्ट–अनिष्टपना मानना वह ज्ञानका स्वभाव नहीं है, तथा ज्ञेयोंका भी ऐसा स्वभाव नहीं है।

प्रश्न :—ज्ञान हेय–उपादेय तो करता है न ?

समाधान :—चारित्रकी अपेक्षासे वह उपचार आता है। ज्ञान तो मात्र सबको जानता है। परको जानना–ऐसा कहना वह व्यवहार है, क्योंकि परमें तन्मय हुए बिना जानता है।

यह सर्वज्ञ हैं इसलिए आदरणीय हैं—ऐसा माने तो परके कारण राग माना वह भूल

जो कर्म-तरु-जड़ नाशके सामर्थ्यरूप स्वभाव है।
स्वाधीन निज समभाव आलुंछन वही परिणाम है ॥११०॥

है। ज्ञानी तो मात्र जानता है, परन्तु अभी पूर्ण वीतराग नहीं है, इसलिए चारित्रदोषके कारण विकल्प उठता है। तथा ज्ञानने जाना इसलिए विकल्प उठा, ऐसा भी नहीं है, और वे पदार्थ हैं इसलिए विकल्प उठा ऐसा भी नहीं है। प्रतिमाके कारण राग नहीं होता, तथा जाननेके कारण राग होता हो, अथवा ज्ञेयोंके कारण राग होता हो केवलीको भी राग होना चाहिए, परन्तु ऐसा होता नहीं है। साधक जीवको रागकी भूमिका होनेसे विकल्प उठता है, परन्तु परको आदरणीय मानकर वह विकल्प नहीं उठता। ज्ञानीको उस काल चारित्रगुणकी अशक्तिके कारण राग होता है, उसे ज्ञान जानता है। केवली भगवान अनन्त पदार्थोंको जानते हैं परन्तु उनको राग नहीं होता, क्योंकि वे वीतराग हैं। रागी जीवको राग होता है। ज्ञेयोंके कारण राग नहीं है, ज्ञानके कारण राग नहीं है और रागके कारण ज्ञेयका ज्ञान नहीं है। ऐसा जानना चाहिए।

आत्माको धर्म कैसे हो? ज्ञानमें एकाग्रता होना वह अनुभव है। आत्माके ज्ञानस्वभावमें वर्तमान पर्याय एकत्व हो वह धर्म है। रागके साथ एकत्व हो वह अधर्म है। यह नियम बदले ऐसा नहीं है। त्रैकालिक शक्तिवानकी सत्ता वह द्रव्य है, शक्तिसत्ता वह गुण है और पर्यायसत्ता—ऐसे तीन प्रकारसे वस्तु हो सकती है। ज्ञानमें तीनों ज्ञात होने योग्य हैं। दीक्षाके पश्चात् ऋषभदेव भगवानको एक हजार वर्षके बाद केवलज्ञान हुआ, भरत चक्रवर्तीको अन्तर्मुहूर्तमें केवलज्ञान हुआ—ऐसा ज्ञान जानता है। अन्तर्मुहूर्तमें केवलज्ञान हो वह अच्छा और हजार वर्षमें केवलज्ञान हो वह अच्छा नहीं—ऐसा ज्ञेयस्वभावमें नहीं है, तथा ज्ञानस्वभावमें नहीं है। जो पर्याय जैसी हो वैसा ज्ञान जानता है।

सुदेव या कुदेवादि दोनों ज्ञेय हैं। ज्ञानी उनको जानता है। यह आदरणीय हैं और यह नहीं हैं—ऐसा भेद ज्ञानमें नहीं है, तथा ज्ञेयमें भेद नहीं है। धर्मी जीव जैसा है वैसा जानता है। यह ज्ञेय उच्च है, इसलिए राग हो ऐसा नहीं है। उस समयका जो राग है उसे भी ज्ञान जानता है। ज्ञान जानता है कि राग होता है। इसप्रकार ज्ञानका विवेक रहना वह धर्म है। गुण–गुणीकी एकता होना वह धर्म है।

वस्तु है वह स्वभाववान है। उसे स्वभाव अथवा गुण होते हैं और उसके वर्तमान अंशको पर्याय कहते हैं। उसे ज्ञान जानता है। यह आदरणीय है और यह त्याज्य है ऐसा ज्ञानमें नहीं है। ज्ञेयका जाननेका स्वभाव है, परन्तु अन्यको राग–द्वेष करानेका स्वभाव नहीं

निर्मलगुणाकर कर्म-विरहित अनुभवन जो आत्मका।
माध्यस्थ भावोंमें करे, अविकृतिकरण उसे कहा ॥१११॥

है। तथा ज्ञानका स्वभाव जाननेका है, परन्तु राग–द्वेष करानेका ज्ञानका स्वभाव नहीं है। साधक ज्ञानीको अपनी अशक्तिसे राग आता है, परन्तु राग आदरणीय है ऐसा ज्ञान नहीं जानता, राग है ऐसा ज्ञान जानता है। वस्तुका स्वभाव वह धर्म है। आत्माका स्वभाव ज्ञान है। जानना वही धर्म है।

कोई पूछे कि—अनायतनोंको छोड़नेकी बात शास्त्रमें आती है न?

समाधान :—मैं ज्ञानस्वरूप हूँ ऐसा ज्ञान जानता है। जिस प्रकारका राग आता है उसे ज्ञान जानता है। श्री समयसारकी छठवीं गाथामें कहा है कि—प्रमत्त–अप्रमत्तदशा मेरा स्वरूप नहीं है, जानना वह ज्ञायकका स्वभाव है।

प्रमत्तभाव आता है वह ज्ञानका ज्ञेय है,—ऐसा कहना वह भी व्यवहार है। स्वयं अपनेको जानता है वह निश्चय है। प्रमत्त और अप्रमत्तकी पर्याय है इसलिए ज्ञान है—ऐसा नहीं है। यदि ऐसा हो तो उसके साथ ज्ञान तन्मय हो जाए। प्रमत्त–अप्रमत्त दशा जाननेमें आती है वह अपने स्व–पर प्रकाशक ज्ञानस्वभावके सामर्थ्यके कारण ज्ञात होती है। — ऐसा निश्चय ज्ञानस्वभाव जानना वह धर्म है ।

यहाँ पर्याय सत्ताकी बात चलती है। सर्व पदार्थोंकी जो वर्तमान दशा है उसे ज्ञान जानता है। ज्ञान रागकी पर्यायको या केवलीकी पर्यायको ज्ञेयरूपसे जानता है। हेय–उपादेयके कथन आते हैं वे व्यवहारनयके कथन हैं। निश्चय ज्ञानस्वभाव जाने उसका व्यवहार सच्चा है। केवली भगवानके कारण राग होता हो तो सबको राग होना चाहिए, परन्तु ऐसा होता नहीं है। साधक जीवको चारित्रगुणकी अशक्तिके कारण राग आता है, उस पर्यायसत्ताको ज्ञान जानता है। विकल्प, राग, प्रमत्त, अप्रमत्त—सब पर्यायसत्ता है उसे ज्ञान जानता है, वह भी व्यवहारसे जानता है। विकल्प है इसलिए ज्ञानपर्याय हुई है ऐसा नहीं है। चारित्रगुणकी प्रमत्तरूप पर्याय हुई, इसलिए ज्ञानकी पर्याय हुई ऐसा माने तो ज्ञानका स्वसामर्थ्य नहीं रहता। ज्ञान अपने सामर्थ्यसे रागादिको जानता है। ज्ञान परपदार्थोंको जानता है—ऐसा कहना वह व्यवहार है, असत्यार्थ है; इसलिए छोड़ने योग्य है। स्वयं अपनेको जानता है वह निश्चय है, भूतार्थ है। अपना ज्ञानस्वभाव कैसा है—वह जाने बिना पर्याय सत्ताको या परकी सत्ताको यथार्थ नहीं जान सकता। आप्त बिना वस्तुस्वभावका ज्ञान नहीं होता। वस्तुस्वभावको जाने बिना सम्यग्दर्शन नहीं होता, सम्यग्दर्शन बिना चारित्र नहीं होता, चारित्र बिना केवलज्ञान नहीं होता और केवलज्ञानके बिना सिद्धदशा नहीं होती। (क्रमशः) ✻

अर्हंत लोकालोक द्रष्टाका कथन है भव्यको
—'है भावशुद्धि मान, माया, लोभ, मद बिन भाव जो' ॥११२॥

मुक्तिका मार्ग

(सत्तास्वरूप पर पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रवचन)

(प्रवचन : १)

तत्त्वनिर्णयकी दुर्लभता

कोई यह कहे कि केवली होने पर ही यह समझा जा सकता है, अभी हम यह कैसे समझ सकते हैं? अभी तो मात्र क्रिया करना है। ऐसे माननेवाला कभी केवली तो नहीं होगा किन्तु तत्त्वकी अरुचिसे केवल एक इन्द्रियवाला (निगोदिया) हो जायगा। व्यवहारधर्मका अर्थ क्या है? यही कि मात्र वर्तमानमें रागका मन्द भाव, उससे आत्माके जन्ममरणका अन्त नहीं हो सकता। कदाचित् किसी जीवको सच्चे देव-गुरुका संयोग मिल जाय और पूजा, दान, शील, व्रत, संयम इत्यादि व्यवहारधर्मकी वासना उत्पन्न भले ही हो जाय; किन्तु जिससे अनादिकालीन मिथ्यात्वरोग दूर होता है, विपरीत मान्यतारूपी क्षयरोग नष्ट होता है, ऐसे कारणोंका (सम्यग्दर्शनादिकका) मिलना तो उत्तरोत्तर महा दुर्लभ है। इस हीन कालमें जैनधर्मका यथार्थ ज्ञान और श्रद्धानपूर्वक चारित्रधर्म बहुत कठिन है, जब कि यह बात है तब जीवोंको क्या करना चाहिए? सो कहते हैं।

तत्त्वका निर्णय करना भी एक धर्म है और उसका फल सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है। जैनधर्मानुसार यथार्थ ज्ञान-श्रद्धान-चारित्रका होना दुर्लभ है, फिर भी तत्त्वनिर्णयरूप धर्म तो बालक भी कर सकता है, आठ वर्षकी बालिका हो या कोई वृद्ध पुरुष, प्रत्येक तत्त्वनिर्णय कर सकता है। वृद्ध तो शरीर होता है; शरीरके वृद्ध होनेसे आत्मामेंसे तत्त्वनिर्णय करनेकी शक्ति नहीं चली जाती। बाल, वृद्ध, रोगी, निरोगी, धनवान, निर्धन, सुक्षेत्री–कुक्षेत्री कोई भी जीव यदि चाहे तो तत्त्वनिर्णय कर सकता है। तत्त्वनिर्णय भी धर्म है। धर्ममें रोटीके साधनकी आवश्यकता नहीं होती, यदि रोटीकी परिपूर्णता होनेपर ही धर्म होता हो तब तो धर्म पराधीन बन जायेगा, धर्मका ऐसा स्वरूप नहीं है। चाहे जो व्यक्ति, धर्मका निर्णय कर सकता है। सुक्षेत्र या कुक्षेत्र इत्यादि किसी भी परिस्थितिमें तत्त्वनिर्णय प्राप्त किया जा सकता है।

इस प्रकार यहाँ यह बताया गया है कि किसके तत्त्वनिर्णय हो सकता है और

व्रत, समिति, संयम, शील, इन्द्रियरोधका जो भाव है।
वह भाव प्रायश्चित्त है, अरु अनवरत कर्तव्य है॥११३॥

किसके नहीं। अब आगे यह बताया जायेगा कि जिसके तत्त्वनिर्णय हो सकता है उसे तत्त्वनिर्णय करनेके लिए क्या करना चाहिए।

तत्त्वनिर्णय करनेकी प्रेरणा

'जो पुरुष अपने हितका वांछक है उसे सर्व प्रथम यह तत्त्व निर्णयरूप कार्य ही करना चाहिए।' यह आत्मा अनादिकालसे संसार परिभ्रमण कर रहा है, उसमें उसने इस तत्त्वका यथार्थ निर्णय एक क्षणभरके लिए भी नहीं किया कि वीतराग भगवान क्या कहते हैं। तत्त्वका स्वरूप समझे बिना यह जीव अनन्तबार पूजा, दान, शील और महाव्रत इत्यादि कर चुका है। किन्तु सच्ची समझके बिना उसे अभी-तक यथार्थ सुख प्राप्त नहीं हुआ और परिभ्रमणका दुःख दूर नहीं हुआ।

सुख तो प्रत्येक जीवको प्रिय है किन्तु कर्मका नाश हुए बिना सुख प्रगट नहीं होता, वीतरागताके बिना कर्मका नाश नहीं होता, चारित्रके बिना वीतरागता नहीं होती, सम्यग्दर्शन-ज्ञानके बिना चारित्र नहीं होता, तत्त्वका निर्णय हुए बिना सम्यग्दर्शन-ज्ञान नहीं होता और सर्वज्ञकथित आगमके ज्ञानके बिना तत्त्वका निर्णय नहीं होता। उस तत्त्व-निर्णयरूप आगमका ज्ञान करनेकी योग्यता एक इन्द्रियसे लेकर असंज्ञी पंचेन्द्रिय तकके जीवोंमें नहीं है। क्योंकि उनके तत्त्व-विचारकी ही शक्ति नहीं है। मनुष्यभवमें भी यथार्थ श्रद्धानादि होना कठिन है। श्रद्धानादिका अर्थ है सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र, इन तीनोंका होना कठिन है; तो भी सम्यक्भान आठ वर्षका बालक या रोगी-निरोगी सभी मनुष्य कर सकते हैं यह बात कही जा चुकी है। सुखकी चाहनावाले जीवोंको यही कार्य करना चाहिए।

वीतरागदेवने क्या कहा है इस तत्त्वका निर्णय किये बिना जीव मुक्ति मार्गसे उल्टे मार्गमें दौड़ लगा रहा है। वह इस बातका निर्णय नहीं करता कि उसने स्वयं क्या माना है और जिसे वह गुरु मान रहा है वे क्या कहते हैं और वीतरागका मार्ग क्या है? वीतरागका मार्ग तो त्रिकालमें एक ही होता है। सर्वज्ञ वीतराग द्वारा कहे गये तत्त्वनिर्णयके बिना कदाचित् दया-दानादिकमें कषायको मन्द करे तो शुभभावका पुण्य भले बांध ले, किन्तु उसमें धर्म तो किंचित् मात्र नहीं होगा। जैसा वीतराग भगवानने कहा है उसे

(शेष देखे पृष्ठ २९ पर)

क्रोधादि आत्म-विभावके क्षय आदिकी जो भावना।
है नियत प्रायश्चित्त वह जिसमें स्वगुणकी चिंतना ॥११४॥

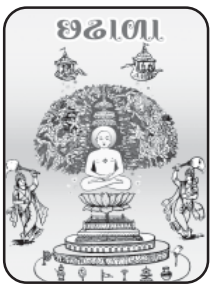

श्री छहढाला पर पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रवचन

(दूसरी ढाल, गाथा ९-१२)

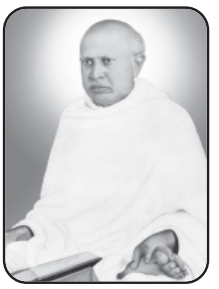

गृहीत मिथ्यादर्शनका स्वरूप और मिथ्यात्वपोषक कुगुरु-कुदेव-कुधर्मका सेवन छोड़नेका उपदेश

रागादिक भावहिंसा और त्रस-स्थावरके घातरूप द्रव्यहिंसा, ऐसा हिंसासे भरी हुई मिथ्याक्रियायें वे कुधर्म है। ऐसे कुधर्मका सेवन वह तीव्र मिथ्यात्व है। जैनधर्म तो वीतरागतापोषक है, वीतरागभाव ही धर्म है। जो यज्ञ आदिमें पंचेन्द्रिय पशुका वध करके उसमें धर्म मनाये, स्वयंके शरीरका मांस अन्यको खिलावे उसे दानधर्म माने, नदी-समुद्र आदिमें स्नान करनेसे धर्म माने–यह सब कुधर्मका सेवन है, उसमें हिंसाका पोषण है। यदि त्रस जीवोंके घात से भी धर्म होगा तो नरक में कौन जायेगा ? त्रसहिंसाके तीव्र पापका फल तो नरक ही है, उसमें धर्म कैसा ? अभी तो शुभरागमें धर्म मनाये उसे यथार्थ धर्मकी भी खबर नहीं है, तो फिर पापकी तो क्या बात ? शुभरागसे स्वर्ग मिलता है, मोक्ष नहीं; मोक्ष तो वीतरागभावसे ही मिलता है, अर्थात् वीतरागभाव ही धर्म है; और वीतरागभाव शुद्धात्माके अनुभवसे ही होता है, इसलिये शुद्धात्माका अनुभव ही धर्म है।

वीतरागी देव-गुरुकी पूजा आदिमें शुभभाव है; उसमें अल्प हिंसा है लेकिन एक तो उस हिंसाका अभिप्राय नहीं, दूसरा उससे स्थावर हिंसाको मिटा सकते नहीं, और तीसरा उस हिंसामें धर्म मानते नहीं। उसमें अल्पहिंसा है लेकिन बहुत शुभभाव है (सावद्य लेना, अति पुण्यराशि) इसलिये अशुभसे बचनेके लिये पूजन-भक्तिका शुभभाव योग्य ही है। उसमें हिंसाका राग-द्वेषके पोषणका अभिप्राय नहीं है लेकिन वीतरागताका ही बहुमान और उसका अनुमोदन है; वह क्रिया अहिंसाके अनुबंधवाली है। स्थावरहिंसा जिससे टाल न शके लेकिन त्रसहिंसासे और अशुभपनेसे बचे ऐसी शुभक्रियाएँ पूजा आहारदान आदि गृहस्थभूमिकामें होती है। फिर मुनिदशामें शुद्धोपयोग होने पर वह शुभराग भी छूट जाता है। गृहस्थ भी स्वयंके परिणामके विवेक बिना चाहे कैसे भी हिंसाकार्यमें प्रवर्ते–उसकी यहाँ

अभिमान मार्दवसे तथा जीते क्षमासे क्रोधको।
कौटिल्य आर्जवसे तथा संतोष द्वारा लोभको ॥११५॥

बात नहीं है। रात्रिको रुचे ऐसा आरंभ-समारंभ कि जिसमें त्रस जीवोंकी अत्याधिक हिंसा नजर के सामने देख रहा हो ऐसे कार्य तो गृहस्थको भी शोभा नहीं देते है। रात्रिको भोजन और पूजनादि कार्य न करे। सभी प्रकारका विवेक होना चाहिये। भाई, सर्वज्ञके मार्गमें तो जैसे स्वयंकी कषायकी मंदता हो और वीतरागता हो इस प्रकार विवेकसे प्रवर्तना चाहिये। स्वयंके परिणाम देखना शीखना चाहिये, और जैसे स्वयंको वीतरागविज्ञानका लाभ हो ऐसे वर्तना चाहिये। जिसमें धर्मके नामसे त्रसहिंसा होती हो अथवा किसी भी प्रकारसे हिंसामें धर्म मनाते हो ऐसे कुमार्गोंको दूरसे ही त्यागने योग्य है। यह कुमार्गों तो विषय-कषायके पोषक है, उसके सेवनमें जीवका बहुत अहित है। भाई ! तू यथार्थ मार्गको पहिचान–कि जिसके सेवनसे तेरा हित हो।

देव-गुरु-धर्मकी पहिचानमें जिसकी भूल है वह विपरीतताका सेवन करते है उसे गृहीतमिथ्यात्व है; और उस गृहीतमिथ्यात्वका नाश करके यथार्थ देव-गुरुको पूजे तदपि जीवादि तत्त्वोंके निर्णयमें जिसकी भूल है उसे तो अभी भी अगृहीतमिथ्यात्व है। सच्चे देव-गुरु-धर्मको पहिचान कर और उसमें कहे जीवादि तत्त्वोंका यथार्थ स्वरूप पहिचान कर श्रद्धा करने पर गृहीत और अगृहीत दोनों मिथ्यात्वका नाश कर अपूर्व सम्यग्दर्शन होता है; जो महान कल्याणका मूल है।

इस प्रकार चार गाथा (९ से १२)में कुगुरु-कुधर्मके सेवनरूप गृहीतमिथ्यादर्शनका स्वरूप पहिचानकर उसे छोड़नेका उपदेश दिया; अब गृहीत मिथ्यादर्शनके साथ गृहीत मिथ्याज्ञानका स्वरूप पहिचानकर उसका नाश करनेका उपदेश १३वीं गाथामें देंगे।

गृहीत मिथ्याज्ञानका स्वरूप और उसे छोड़नेका उपदेश

एकान्त-वाद-दूषित समस्त विषयादिपोषक अप्रशस्त।
कपिलादि-रचित श्रुतको अभ्यास, सो है कुबोध बहु देन त्रास॥१३॥

आत्माको दुःखका जो कारण है उसे छोडनेकी यह बात चलती है। दुःखका कारण अन्य कोई नहीं है लेकिन जीवोंको स्वयंका विपरीतभाव ही दुःखका कारण है। द्रव्य-गुण-पर्याय स्वरूप वस्तु अनेकान्तरूप है। उसको न जाननेवाले अज्ञानीयों द्वारा रचित जो शास्त्र है वे समस्त एकान्तवादसे दूषित है, और विषय-कषायके पोषक है, तथा अप्रशस्त है अर्थात्

उत्कृष्ट निज अवबोध अथवा ज्ञान अथवा चित्तको।
धारे मुनि जो पालता वह नित्य प्रायश्चित्तको॥११६॥

कि हितकर नहीं है लेकिन जीवका अहित करनेवाले है, अर्थात् वे कुशास्त्र है; और उनका अभ्यास, उसकी मान्यता, उसे यथार्थ समझकर उसका वांचन-सुनना यह सभी कुज्ञान है, वह गृहीतमिथ्याज्ञान है, और वह अधिक त्रास देनेवाला है। इसलिये उसका सेवन छोड़ना चाहिये।

वीतराग सर्वज्ञ अर्हन्तदेवने बताया जो अनेकान्तमय वस्तुस्वरूप, उससे विपरीत कहनेवाले शास्त्रों दुनियामें चाहे प्रसिद्ध हो और चाहे किसीके द्वारा रचित हो लेकिन वे कुशास्त्र है। निगोदसे असंज्ञी पंचेन्द्रिय तकके जीवोंको शास्त्र वांचन ही कहाँ है ? इतना क्षयोपशम ही नहीं था। अब उसे क्षयोपशम हुआ और पढ़ने जितनी बुद्धि मिली उसमें यदि कुशास्त्रों और विषय-कषायके पोषक शास्त्रोंमें ही बुद्धिका दुरुपयोग किया तो तेरी बुद्धि दुर्बुद्धि है, मिथ्याबुद्धि है। इसलिये भाई ! वीतरागदेव कथित यथार्थतत्त्वको समझनेमें तेरी बुद्धिको लगा।

सर्वज्ञ भगवान अतीन्द्रिय–प्रत्यक्ष–संपूर्ण ज्ञान द्वारा जगतको साक्षात् जाननेवाले है, वे कहते है कि जगतमें अनंता भिन्न-भिन्न जीवों है; प्रत्येक जीव ज्ञानस्वरूप है, वे स्वयंके अनंत धर्म सहित है। जीव और अजीव सभी पदार्थोंमें स्वयंके स्वाधीन अनंत गुणपर्यायें है; उसका कोई कर्ता नहीं है। स्व-परको जाने ऐसा जीवका स्वभाव है; जानना उसमें राग नहीं; अर्थात् आत्मा वीतरागविज्ञानका घन है। ऐसा ज्ञानस्वभावी संपूर्ण आत्मा है वह ही मैं हूँ–ऐसा स्वयंको जाने तब अनादिका अज्ञानका नाश हो।

ज्ञानका कार्य जाननेका है; राग-विकल्प करना उसका कार्य नहीं है। निर्विकल्प होकर ऐसा ज्ञानस्वभाव अनुभवमें लिया वहाँ रागादिका कर्तृत्व छूट जाता है, और वीतरागी आनंदका अनुभव होता है।–ऐसे अनुभव सहित आत्माको जाने तब आत्माको पहिचाना कहा जाता है और तब अगृहीत मिथ्यात्वका नाश होता है।

अरे, अज्ञानीके द्वारा प्ररूपित, नास्तिकपनेके पोषक कुशास्त्रोंका जो सेवन करे, ईश्वर कर्तृत्व आदि पराधिनता बतलानेवाले शास्त्रोंका जो सेवन करे, युद्ध आदि शास्त्रोंका जो सेवन करे–उसे तो कुज्ञानका सेवन है, और जैनके नामसे रचित शास्त्रोंमें भी जिसमें वीतरागी देव-

(शेष देखे पृष्ठ २९ पर)

बहु कथनसे क्या जो अनेकों कर्म-क्षयका हेतु है।
उत्तम तपश्चर्या ऋषिकी सर्व प्रायश्चित्त है ॥११७॥

आत्माको प्रसन्न करनेकी लगनी

जगतके जीवोंको दुनिया प्रसन्न कैसे हो और दुनिया जो चाह रही है वह कैसे हो–ऐसा तो अनंतबार किया है लेकिन मैं आत्मा वास्तविकरूपसे प्रसन्न होऊँ और मेरे आत्माको वास्तविक क्या चाह है–उसका कभी विचार भी किया नहीं है, और कोईबार परवाह भी नहीं की है। जिसे आत्माको प्रसन्न करनेकी लगनी जागृत हुई वह आत्माको प्रसन्न अवश्य करेगा ही और उसे 'प्रसन्न' अर्थात् 'आनंदधाम'में अवश्य ही पहुँचेगा। यहाँ जगतके जीवोंको प्रसन्न करनेकी बात नहीं है, किन्तु जो स्वयंका हित चाहता हो उसे क्या करना उसकी बात है। स्वयं स्वभाव ज्ञान-आनंदसे परिपूर्ण है उसकी श्रद्धा करे तो उससे कल्याण हो, उसके अतिरिक्त अन्यसे कल्याण तीनकाल तीनलोकमें होगा ही नहीं।

जीवोंको यह बात कठिन लगती है इसलिये दूसरा रास्ता लेनेसे धर्म हो जायेगा! ऐसे विपरीत शल्यसे ग्रसित है। किन्तु भाई! अनंतकाल तक तू बाह्यमें देखा कर तो भी आत्मधर्म प्रगट नहीं होगा। इसलिये परका आश्रय छोड़कर स्वतत्त्वकी रुचि करना....प्रेम करना...मनन करना वह ही सत् स्वभावको प्रकट करनेका उपाय है। इसलिये स्वयंका हित चाहता है वह ऐसा करो–ऐसा आचार्यदेव कहते हैं। जिसे स्वयंका हित करना हो उसे ऐसी लगनी होगी।

अज्ञानी जीवोंकी बाह्यदृष्टि होनेसे वह ऐसा मानता है कि मैं परका आश्रय लेता हूँ तो धर्म होता है; लेकिन ज्ञानी कहते है कि हे भाई! तू सभीका आश्रय छोड़कर तू अंतरमें तेरे आत्माकी श्रद्धा कर, आत्माको प्रगट करनेका आधार अंतरमें है। आत्माकी पवित्रता और आत्माका आनंद वह आत्मामेंसे ही प्रगट होता है। बाह्यके आश्रयसे किसी भी कालमें धर्म प्रगट होता नहीं है।

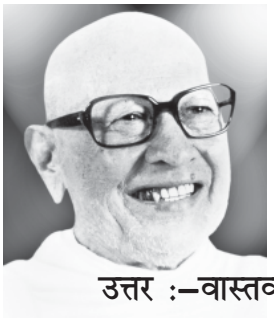

युवा-विभाग

(इस विभागके अंतर्गत मुमुक्षुओंकी पूज्य गुरुदेवश्रीके साथ रात्रिके समय चर्चा हुई, वह दी जा रही है।)

प्रश्न :–स्वानुभव मनजनित है या अतीन्द्रिय है?

उत्तर :–वास्तवमें स्वानुभवमें मन और इन्द्रियोंका अवलम्बन नहीं है, इसलिए वह अतीन्द्रिय है; परंतु स्वानुभवके समय मति-श्रुतज्ञान विद्यमान है और वह मति-श्रुतज्ञान मन अथवा इन्द्रियोंके अवलम्बन बिना होती नहीं, इस अपेक्षासे स्वानुभवमें मनका अवलम्बन भी कहा गया है। वास्तवमें जितना मनका अवलम्बन टूटा, उतना ही स्वानुभव है—स्वानुभवमें ज्ञान अतीन्द्रिय है।

प्रश्न :–निर्विकल्प अनुभूतिमें मनका सम्बन्ध छूट गया है, यह बात कितने प्रतिशत सत्य है?

उत्तर :–शतप्रतिशत सत्य है। वहाँ निर्विकल्पतारूप जो परिणमन है, उसमें तो मनका अवलम्बन किंचित्मात्र भी नहीं है, क्योंकि उसमें तो मनका सम्बन्ध सर्वथा छूट गया है; परंतु उस समय जो अबुद्धिपूर्वक रागका परिणमन शेष रह गया है, उसमें मनका सम्बन्ध है–ऐसा समझना।

प्रश्न :–अनुभव द्रव्यका है या पर्यायका?

उत्तर :–'अनुभव'में अकेला द्रव्य या अकेली पर्याय नहीं है, किन्तु स्वसन्मुख झुकी हुई पर्याय द्रव्यके साथ तद्रूप हुई है, अतः द्रव्य-पर्यायके बीचमें भेद नहीं रहा; ऐसी जो दोनोंकी अभेद अनुभूति–वह अनुभव है। द्रव्य और पर्यायके बीचमें भेद रहे, तब तक निर्विकल्प अनुभव नहीं होता।

प्रश्न :–जिस समय, त्रिकाली द्रव्यके आश्रयसे निर्विकल्प आनन्दकी अनुभूति होती है, उसी समय 'मैं आनन्दका अनुभव कर रहा हूँ'—ऐसा विचार आता है क्या?

उत्तर :–निर्विकल्प अनुभूतिके कालमें आनन्दका वेदन है, किन्तु विकल्प नहीं है। जब निर्विकल्पसे विकल्पमें आता है, तब ध्यानमें आता है कि आनन्दका अनुभव हुआ था, परन्तु आनन्दके अनुभवकालमें 'मैं आनन्दानुभव करता हूँ'–ऐसा भेद नहीं है, वेदन है।

अर्जित अनन्तानन्त भवके जो शुभाशुभ कर्म हैं।
तपसे विनश जाते सुतप अतएव प्रायश्चित्त है॥११८॥

प्रश्न :–आप परकी पर्यायको परद्रव्य कहो, परंतु स्वकी निर्मल पर्यायको भी परद्रव्य क्यों कहते हैं ?

उत्तर :–परद्रव्यके लक्षके समान निर्मल पर्यायके लक्षसे भी राग होता है, अतः उसे भी परद्रव्य कहा है। वह द्रव्यसे सर्वथा भिन्न है ऐसा जोर दिये बिना दृष्टिका जोर द्रव्य पर नहीं जाता; इसलिए निर्मल पर्यायको भी परद्रव्य, परभाव तथा हेय कहा है। जिसे पर्यायका प्रेम है, उसका लक्ष परद्रव्य पर जाता है, इसलिये उसे प्रकारान्तरसे परद्रव्यका ही प्रेम है। परम सत्यस्वभाव ऐसे द्रव्यसामान्यके ऊपर लक्ष जाना अलौकिक बात है।

प्रश्न :–जिस प्रकार आमका स्वाद आत्माको आता है; उसी प्रकार आत्माके अनुभवका स्वाद कैसे होता है ?

उत्तर :–आम तो जड़ है, अतः उस जड़का स्वाद आत्माको आता नहीं। आमके मीठे रसका ज्ञान होता है और आम अच्छा है–ऐसी ममताके रागका दुःखरूप स्वाद आत्माको आता है। आत्माके अनुभवका जो अतीन्द्रिय आनन्द आता है, वह वचन अगोचर है; अनुभवगम्य है।

प्रश्न :–इस आत्माका स्वरूप विचारमें आने पर भी प्रगट क्यों नहीं होता ?

उत्तर :–इसके लिये योग्य पुरुषार्थ चाहिए। अन्दरमें अपार शक्ति पड़ी है, उसका माहात्म्य आना चाहिये। वस्तु तो प्रगट है ही, पर्यायकी अपेक्षासे उसे अप्रगट कहा जाता है। वस्तु कही आवरणसे आच्छादित नहीं है कि भान हो तो माहात्म्य आवे; परंतु ऐसा है नहीं। सर्वप्रथम माहात्म्य आना चाहिए, पश्चात् माहात्म्य आते-आते भान हो जाता है।

प्रश्न :–आत्माके भिन्न-भिन्न गुण ध्यानमें आते हैं, तथापि अभेद ध्यानमें क्यों नहीं आता ?

उत्तर :–स्वयं ध्यानमें लेता नहीं, इसलिए नहीं आता। अभेदको लक्षमें लेना तो अंतिम स्थिति है। निर्विकल्प होने पर ही अभेद आत्मा लक्षमें आता है।

प्रश्न :–उसे लक्षमें लेना कठिन पड़ता है ?

उत्तर :–प्रयत्न करो ! घबड़ाने जैसी बात नहीं है। अभेद आत्मा अनुभवमें आ सकने योग्य है, इसलिए धीरे-धीरे प्रयास करना, निराश मत होना। ऐसे कालमें ऐसी ऊंची बात सुननेको मिली है—यही क्या कम है ?

शुद्धात्म आश्रित भावसे सब भावका परिहार रे।
यह जीव कर सकता अतः सर्वस्व है वह ध्यान रे ॥११९॥

प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्रीकी गुरुभक्तिपूर्ण आध्यात्मिक तत्त्वचर्चा

प्रश्न :— *स्वानुभूतिमें आत्मा जिस प्रकार नारियलका गोला नारियलसे पृथक् है उसी प्रकार शरीरसे अत्यंत भिन्न है ऐसा खयालमें आता है?*

समाधान :—स्वयं पृथक् ही हो जाता है। एकदम निराला हो जाता है। चैतन्यतत्त्व अकेला निराला होकर स्वयं अपनी अनुभूति करता है, स्वयं अपने अनन्त गुणोंका वेदन करता है। चैतन्यगोला पृथक् होकर, चैतन्यरूपसे स्वयं अपनेको अनुभवता है। इस अनुभवमें जो विभावोंका वेदन है वह छूट जाता है और अंतरमेंसे चैतन्यका वेदन प्रकट होता है। बिलकुल ऐसा निराला हो जाता है। शरीरका खयाल नहीं रहता। उपयोग जब बाहर आये तब 'शरीर जुदा और मैं ज्ञायक जुदा' ऐसी जुदेपनकी–निरालेपनकी परिणति वर्तती है। अंतरमें जानेपर तो यह भी ध्यान नहीं रहता कि शरीर कहाँ है? विकल्पोंके प्रतिका उपयोग भी छूट जाता है और अकेले चैतन्यका वेदन रहता है, अकेली आनन्दकी धारा वर्तती है। उसके साथ अनन्त गुणोंकी पर्याय प्रकट होती है।

प्रश्न :— *हमें तो लगता है कि हम बहुत पुरुषार्थ करते हैं, फिर भी परिणाम कुछ नहीं दिखता। तो आप इस सम्बन्धमें विशेष स्पष्टतासे समझायें।*

समाधान :—अपने पुरुषार्थकी कमी है। अपने पुरुषार्थमें बस, एक ही लगन और दिन–रात उसीका प्रयत्न करना चाहिये। आत्माकी भिन्नता बुद्धिमें ग्रहण की, परन्तु अंतर्-परिणतिमें भेदज्ञानकी ऐसी धारा प्रकट होनी चाहिये कि 'मैं चैतन्य न्यारा हूँ।' अपने प्रयत्नकी कमी है। मैं चैतन्य जुदा हूँ, जुदा हूँ—ऐसी न्यारापनेकी परिणति अंतरमेंसे प्रकट होनी चाहिये, तब स्वानुभूति होती है। मात्र विचार चले वह ठीक है, परन्तु अंतरमें गहरे उतरकर जो स्वभाव है उस स्वभावमेंसे न्यारापना आना चाहिये।

प्रश्न :— *शुद्धनयका और सम्यग्दर्शनका विषय क्या एक आत्मा ही है? क्या दृष्टिमें किसी पर्यायका स्वीकार नहीं है?*

समाधान :—दोनोंका विषय एक आत्मा ही है, पर्याय नहीं। द्रव्यदृष्टिमें पर्याय

शुभ-अशुभ रचना वचनकी, परित्याग कर रागादिका।
उसको नियमसे है नियम जो ध्यान करता आत्मका ॥१२०॥

नहीं आती। अपूर्ण एवं पूर्ण पर्यायपर भी लक्ष्य नहीं जाता। शुद्धपर्यायका वेदन होता है, तथापि शुद्धपर्यायपर उसकी दृष्टि नहीं होती। दृष्टि तो शाश्वत अनादि–अनन्त पारिणामिकभावपर है। पारिणामिकभावका भी विकल्प नहीं होता। मैं अनादि–अनन्त आत्मा हूँ, उसपर दृष्टि रहती है। शुद्ध–अशुद्ध किसी भी पर्यायपर दृष्टि नहीं होती, उसका वेदन होता है तथापि दृष्टि उसपर नहीं होती। ज्ञान जानता है कि मेरी साधकदशामें चौथागुणस्थान या छठवाँ–सातवाँ गुणस्थान है, ऐसा ज्ञानमें रहता है इसलिये पुरुषार्थ होने लगता है; पुरुषार्थ करता है, परन्तु दृष्टि तो पूर्णरूपसे द्रव्यपर रहती है। पर्यायका वेदन होता है उसे ज्ञान जानता है।

प्रश्न :— *जुदा पाड़नेका अभ्यास करे तो क्या ऐसा एक क्षण आता है जब परिणति अभेद हो जाय ?*

समाधान :—हाँ; जुदे पाड़नेका अभ्यास करे तो परिणति न्यारी हो जाती है। कितनोंको अकुलाहट होती है इसलिये थक जाते हैं; परन्तु स्वयं प्रयत्न करते रहना, उसमें अकुलाना या थकना नहीं। स्वयं उत्साहसे तथा धैर्यसे प्रयत्न करना। प्रयत्न करे तो प्रकट हुए बिना रहता ही नहीं। जिसे अपनी जिज्ञासा तथा प्रयत्न अपनी ओर है उसे समय लगे लेकिन हुए बिना नहीं रहता। अपनेको लगन–रुचि है और कारण दे तो कार्य आये बिना नहीं रहता। जबतक कार्य न हो तबतक समझना कि कारणमें कमी है।

प्रश्न :— *आपको पूर्वभूमिकामें क्या विचार चलते थे ?*

समाधान :—मोक्ष क्या है ? एकान्त दुःख क्यों है ? मोक्षकी आवश्यकता किसलिये ? पुण्य–पाप दोनों दुःखका कारण कैसे ?—ऐसे अनेक प्रकारके विचार करके निर्णय किया था। शकर और कालीजीरी इस दृष्टान्तके विचार आते और वह अपनी बुद्धिसे किसप्रकार बैठे ऐसे सब विचार चलते। उन दिनों जो–जो विचार आते वे सब लिख लेनेकी आदत थी इसलिये अपने लिये लिख लेती थी; ताकि मुझे पुनः विचारनेमें काम आये। धुन तो ऐसी लगी रहती कि हरएक कार्यमें 'आत्मा जुदा है, आत्मा जुदा है' ऐसे रहता। फिर ऐसे लगे कि आत्मा जुदा है ऐसा निर्णय तो किया परन्तु जुदा रहता तो नहीं है—ऐसे कर–करके इस तरह सभी विचार करती। गृहकार्य करूँ तब भी 'आत्मा जुदा है, आत्मा जुदा है' ऐसी धुन रहती। स्वानुभूतिका मार्ग अंतरमें जुदा है और अन्तरसे स्वानुभूति होती है ऐसा गुरुदेवने जो बताया है उसपर विचार चलते थे।

बाल विभाग

दृढ़ श्रद्धानी श्री वारिषेण

राजगृही नगरीके उद्यानमें श्रीकीर्ति श्रेष्ठीके गलेमें हीरोंका हार देखकर मगधसुंदरी मुग्ध हो गई और अपने प्रेमी विद्युतचोरको उस हार लानेको कहा। विद्युतचोरने एक रात्रिको श्रेष्ठीके घरसे उस हारको चुराकर भाग रहा था लेकिन हारके प्रकाशके कारण सिपाही उसके पीछे पकड़नेके लिये दौड़े और विद्युतचोरने स्मशानमें ध्यान कर रहे वारिषेणके पैरके पास डालकर छिप गया। सिपाहीने वारिषेणको चोर समझकर राजाके सामने प्रस्तुत किया, राजाने उसे मृत्युदंड सुनाया लेकिन वारिषेणके पुण्यके प्रभावसे जल्लादकी खडगका वार फूलकी माला बन गया। यह सब प्रसंग देखकर वारिषेणको वैराग्य आता है। अब आगे....

''कल्पवृक्ष तो याचना करने पर फल देते हैं, चिन्तामणि भी चिन्तवन करनेसे फल देते हैं; परन्तु धर्मसे तो बिना याचना किये और बिना चिन्तवन किये ही कोई परम अद्भुत फल प्राप्त होता है।

हे भव्य ! यह घर तो बन्दीगृह समान है। बान्धव बंधनके मूल हैं , स्त्री आपदाका द्वार है। काल अलंघ्य है, इसलिये शरीरकी रक्षा छोड़ धर्मकी रक्षा करना। इस अल्प आयु और चंचल काय के बदले शाश्वत पद मिले तो समझ लेना कि फूटि कौड़ीमें चिन्तामणि रत्न प्राप्त कर लिया।''

बिना विचार किये कृत्य पर अन्तमें पश्चाताप करना पड़ता है। महाराजा श्रेणिकने जब इस अलौकिक घटनाका वृत्तान्त सुना तो वे स्तम्भित रह गये। धर्मका प्रभाव देखकर अपने विना विचारे किये कृत्य पर पश्चाताप करने लगे। धीरे-धीरे उनके नेत्र अश्रुपूर्ण हो गये। वे बारम्बार अपनेको धिक्कारने लगे।

दुःखित हृदय श्रेणिक शीघ्र ही पुत्र वारिषेणके पास वध्यभूमिमें गये। वारिषेणकी निश्चल पुण्यमूर्तिको देखकर उनका हृदय पुत्र-प्रेमसे भर आया। आँखोंमें आनन्दाश्रुपात होने लगा। अपार स्नेह और आप्लावित नेत्रोंसे पुत्रको शीघ्र ही गलेसे लगा लिया और रुंधे कंठसे बोले–

''पुत्र ! मेरे अपराधको क्षमा करो। मैं क्रोधावेशमें अन्धा हो गया था, इसलिये न्याय-अन्यायका निर्णय न कर सका। हे पुत्र ! पश्चातापकी ज्वालासे मेरा हृदय जल रहा है, उसे अपने क्षमा-जलसे उपशान्त करो। मैंने धर्मका अनादर किया है, उसका मैं प्रायश्चित लेता हूँ। मुझे अपने अविवेक पर अत्यन्त खेद है।''

पिताको पश्चाताप करते हुए देखकर वारिषेणके नेत्र भर आये और वे सरलभावसे बोले–

''तात् ! आप यह क्या कर रहे हैं ? आप अपराधी कैसे ? आपने तो अपना कर्तव्य पालन किया है। आप पुत्र-प्रेमवश मुझे दण्ड न देते तो प्रजा आपको न्याय-वत्सल न कहती। आपकी नीति परायणताको देखकर मेरा हृदय आनन्दसे गर्वित है। आपने अपने पवित्र न्यायधर्मकी लाज रखी है। मेरा अशुभकर्मका उदय ही ऐसा था, जो मुझे निरपराध होने पर भी कलंकका टीका लगा। अपने किये शुभाशुभकर्मका फल तो भोगना ही पड़ता है।''

पुत्रके ऐसे पवित्र और उदार विचारोंको सुनकर श्रेणिकका हृदय स्नेहसे गद्‌गद् हो गया। वे अपना सब दुःख भूल गये।

जिस तरह सिंहको सामने देखकर हिरण भय से मुखका तृण भी छोड़ देता है, उसी तरह वारिषेणके पुण्यका प्रभाव देखकर विद्युतचोर बहुत भयभीत हो गया। उसने सोचा कि राजाको यदि मेरा इनके चरणाग्रमें हार फैंकनेका वृत्तान्त मालूम हो गया तो मुझे बहुत कठोर दण्ड देंगे और यदि मैं स्वयं जाकर सत्य-सत्य बात कह दूँ तो शायद मेरे अपराधको क्षमा कर दें अथवा सजा कम कर दें। अपने पापकर्मका फल तो मुझे भोगना ही पड़ेगा।

धिक्कार ! मेरे जीवनको, जो मैंने कामान्ध होकर इस नीच वेश्याके बहकावेमें आकर ऐसा अनर्थ किया है–ऐसा विचार कर वह विद्युतचोर राजाके पास पहुँचा और अति विनम्र होकर सहजभावसे प्रार्थना करने लगा–

''महाराज ! यह सब पापकर्म मेरा है, पवित्रात्मा वारिषेण सर्वथा निर्दोष हैं। पापिन वेश्याके बहकावेमें आकर मैंने यह नीच कृत्य किया है। आजसे मैं यह प्रतिज्ञा करता हूँ कि ऐसा नीच कर्म कभी नहीं करूँगा और अपना सम्पूर्ण जीवन आजसे जिनधर्मकी साधना-आराधनामें ही अर्पण करूँगा। हे कृपानाथ ! दयार्द्र होकर मेरे दुष्कृत्यको क्षमा कीजिये।''

राजा श्रेणिक ने विद्युतचोरको अपने नीचकर्मका पश्चाताप करते हुए देखकर उसे अभयदान देकर दुःखमुक्त किया।

अहो ! धन्य है धर्मका प्रताप ! जिसे देखकर कलका महापापी चोर भी आज धर्मात्मा बन गया। ''हे आत्मन् ! इस जीवकी भूल मात्र एक समयकी ही है। अनादिकालसे

भूला भगवान मात्र एक समयकी भूलमें भ्रमित हो रहा है। एक समयकी भूल सुधारकर यही आत्मा परमात्मा बन सकता है। अहो ! स्वभाव-अपेक्षा तो सभी जीव भगवान हैं; किस पर राग-द्वेष करना। अपने भगवान आत्माका भरोसा ही जीवको भवके अभावकी झनकार जगा देता है।'' (क्रमशः) ✻

(पृष्ठ ७ का शेष भाग) (समयसार प्रवचन)

तीन भावमें क्षयोपशमज्ञान है और वह निर्विकारी आनंदरूप स्वसंवेदन लक्षणवाला है। सम्यग्दर्शनमें क्षयोपशमज्ञान है वह कैसा है ?–कि निर्विकार-स्वसंवेदन लक्षणवाला है, ऐसा कहकर उसमें कहते है कि शास्त्रज्ञान है वह कार्य नहीं करता है लेकिन निर्विकारी स्वसंवेदनज्ञान है वह कार्य करता है, उसे यहाँ क्षयोपशमज्ञान कहते है। सम्यग्दर्शन होने पर जो ज्ञान है वह क्षयोपशमज्ञान है, चाहे क्षायिक सम्यग्दर्शन हो तो भी ज्ञान तो क्षयोपशमज्ञान है। (क्रमशः) ✻

(पृष्ठ १८ का शेष भाग) (मुक्तिका मार्ग)

समझकर उसमें स्थिर होना यही एक ही प्रकारका धर्ममार्ग है, इसलिए सर्व प्रथम तत्त्वनिर्णयरूप सम्यग्दर्शन प्राप्त करना ही योग्य है। इस जीवने सम्यग्दर्शन प्राप्त किये बिना सेवा की, अनुकम्पा की और करोड़ों रुपया दानमें दिये किन्तु वह यह नहीं समझ पाया कि आत्माका स्वरूप क्या है। भगवानके नाम पर बड़े-बड़े दान दिये किन्तु वह यह नहीं समझ सका कि भगवानने क्या कहा है ? इसलिए उसे धर्म नहीं प्राप्त हुआ। धर्मका मार्ग अपूर्व है, उसे यह जीव पहले कभी नहीं समझा। करोड़ोंमें कोई एकाध जीव ही सम्यग्दृष्टि होता है, किन्तु जो जो तत्त्वनिर्णय करना चाहें वे सब निर्णय कर सकते हैं। और यह तत्त्वनिर्णय करनेसे ही मुक्तिका मार्ग हाथ लगेगा। (क्रमशः) ✻

(पृष्ठ २१ का शेष भाग) (छहढाला - प्रवचन)

गुरु-धर्मका स्वरूप विपरीत बतलाया हो, जिसमें देवको भोग दर्शाया हो, गुरुके वस्त्र बतलाये हो और सम्यग्दर्शन बिना मात्र रागसे भवका छेद होनेका कहा हो—उस शास्त्रोंको भी शंका बिना कुशास्त्र समझना। ऐसे कुशास्त्रोंके सेवनमें गृहीत मिथ्याज्ञान है, वह तो महा भवदुःख देनेवाला है। इसलिये ऐसे कुशास्त्रोंका सेवन छोड़ना चाहिये, और जिसमें देव-गुरु-धर्मका और आत्माके हितका यथार्थ स्वरूप समझाया हो ऐसे वीतरागी शास्त्रों द्वारा सत्य स्वरूप समझकर सम्यग्ज्ञान करना चाहिये, वह परमहितका कारण है;—'ज्ञान समान न आन जगतमें सुखको कारण' ऐसा आगे चौथी ढालमें कहेंगे। (क्रमशः) ✻

सुवर्णपुरी समाचार :—

अध्यात्मतीर्थ सुवर्णपुरीका धार्मिक वातावरण अनंत उपकारमय पूज्य सद्गुरुदेव श्री कानजीस्वामी एवं उनके अनन्य भक्त पूज्य बहिनश्री चंपाबेनके कल्याणवर्षी पुण्यप्रतापसे, आशीर्वादसे देव-गुरु-शास्त्रकी, धर्मकी आराधनामय रहता है एवं पं. रत्नश्री हिंमतभाई जे. शाहने बनाये हुए सुमधुर काव्यसे वातावरण भक्तिमय रहता है :—

प्रातः : ६-०० से ६-२० : पूज्य बहिनश्रीकी धर्मचर्चाकी ऑडियो-टेप
सुबह : ८-३० से ९-३० : परमागम श्री समयसार पर पूज्य गुरुदेवश्रीका (१९वीं बारका) सीडी प्रवचन
दोपहर : ३-१५ से ४-१५ : श्री प्रवचनसार संग्रह पर पूज्य गुरुदेवश्रीका टेप प्रवचन
दोपहर : ४-१५ से ४-४५ : श्री जिनेन्द्र भक्ति
रात्रि : ८-०० से ९-०० : बहिनश्रीके वचनामृत पर पूज्य गुरुदेवश्रीका सीडी प्रवचन

※ श्रुतपंचमी पर्व ※

ज्येष्ठ शुक्ला ५, ता. ११-६-२०२४, मंगलवारके दिन श्रुतपंचमीपर्व श्री षट्खण्डागम जिनवाणीकी पूजाभक्तिके विशेष समारोहपूर्वक मनाया जाएगा।

बालकोंके लिये दिये गये मई-२०२४ के प्रश्नोंके उत्तर

(१) आराधना, व्रत
(२) स्व-पर, सूर्य
(३) सम्यक्ज्ञान
(४) केवलज्ञान
(५) जानना – मोक्ष - ज्ञान
(६) अनेकांत – जिन
(७) समयसार
(८) गुण-पर्यायें
(९) केवलज्ञान–सिद्धपद
(१०) दर्शन-ज्ञान-चारित्र
(११) पर
(१२) चारित्र
(१३) ज्ञान
(१४) ज्ञान, पृथक्
(१५) मुनि
(१६) मिथ्या संसार
(१७) अज्ञान
(१८) सम्यक्दर्शन
(१९) स्वयं
(२०) सम्यक्दर्शन

बालकोंके लिये दिये गये जून-२०२४ के प्रश्नोंके उत्तर

(१) पंडित दौलतरामजी
(२) सम्यक् ज्ञान, चारित्र
(३) आत्माका, सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान
(४) अतीन्द्रिय
(५) निर्मलता
(६) स्वरूप, सम्यक्दर्शन
(७) आत्मा, सम्यक्दर्शन
(८) स्वभावके
(९) आत्मा
(१०) ज्ञानमय
(११) सम्यक्दर्शन, अतीन्द्रिय सुख
(१२) शंकादि, मरणादि
(१३) बंध, मोक्ष
(१४) संसार, मोक्ष
(१५) जन्म मरण
(१६) सम्यक्ज्ञान अपूर्व
(१७) जन्म-मरण, अमृत
(१८) केवलज्ञान, भेदज्ञान
(१९) अतीन्द्रिय सुख
(२०) ज्ञान, चारित्र

श्री वर्धमान-सुरेन्द्र-लिंबडी-जोरावरनगर दिगम्बर जैन संघ द्वारा अध्यात्मतीर्थ श्री सुवर्णपुरीमें विविध आनंदोल्लास सह मनाया गया

परम उपकारी कहानगुरुदेवका महामंगलकारी १३५वाँ जन्म महोत्सव

पंचाह्निक आयोजन

स्वानुभवमुद्रित, अध्यात्मयुगस्रष्टा, द्रव्य स्वतंत्रताको बतानेवाले सद्गुरुदेव श्री कानजीस्वामीका १३५वाँ आनंदकारी वार्षिक मंगल जन्मोत्सव उनकी पवित्र साधनाभूमि अध्यात्म-अतिशयक्षेत्र स्वानुभूतितीर्थ श्री सुवर्णपुरी (सोनगढ़में) ता. ५-५-२०२४ से ता. ९-५-२०२४ तक पंचाह्निक, गुरु-महिमाद्योतक समारोहपूर्वक श्री वर्धमान-सुरेन्द्र-लिंबडी-जोरावरनगर संयुक्त मुमुक्षु संघ द्वारा मनाया गया।

श्री सुवर्णपुरी तीर्थ पूजन-विधानका आयोजन

आदरणीय स्मृतिशेष ब्र. वजुभाई साहेबकी भावना थी कि हम संयुक्त संघ पूज्य गुरुदेवश्रीकी जन्मजयंती मनाये और उसमें सुवर्णपुरीमें स्थित सर्व जिनेन्द्र भगवंतोंकी पूजन करें। उनकी भावनानुसार श्री सुवर्णपुरी तीर्थ पूजन-विधानका आयोजन स्वाध्यायमंदिरकी आगे पूर्वदिशामें पूजनमंडपमें किया गया था। उसमें विधानका मांडला तथा प्रत्येक मंदिरके चित्रपट तथा सामने विशाल स्क्रीन पर रोज होनेवाली पूजन अनुरूप उस मंदिर एवं उसमें विराजमान भगवानको दर्शानेमें आता था जो अति सुंदर था। इस प्रसंग पर विधिविधान अध्यक्ष आदिनाथ भगवान तथा श्री सीमंधर भगवान, नेमिनाथ भगवान, महावीर भगवान तथा धातकीविदेहके भावी तीर्थंकर इस प्रकार कुल पाँच भगवानको भक्तिभाव सहित जिनमंदिरमेंसे प्रतिदिन पूजन मंडपमें विराजमान किया जाता था और पूजन पश्चात् भगवानको पुनः मूलस्थान पर विराजमान किये जाते थे। इस विधानमें प्रत्येक पूजनकी जयमालामें उस मंदिरका इतिहासका वर्णन किया गया है।

महोत्सवका दैनिक कार्यक्रम

प्रातः प्रभातफेरी, भव्य सजावटोंसे विभूषित मनोहर डोम मंडपमें पूज्य गुरुदेवश्री, पूज्य बहिनश्रीका मांगलिक, सुवर्णपुरी जयमाला, पूज्य गुरुदेवश्रीके आशीर्वचन पश्चात् पूज्य बहिनश्रीकी तत्त्वचर्चा, ७.४५ से ८-४५ सुवर्णपुरी तीर्थ पूजन विधान, पूज्य गुरुदेवश्रीका श्री समयसार शास्त्र पर सीडी प्रवचन, गुरुभक्ति, प्रासंगिक घोषणा, विद्वान द्वारा धार्मिक शिक्षण, दोपहरको पूज्य गुरुदेवश्रीका नियमसार शास्त्र पर प्रवचन (विहारके समयके) श्री जिनेन्द्र भक्त, विद्वानों द्वारा धार्मिक शिक्षणवर्ग तथा सांजीभक्ति, पूज्य बहिनश्रीकी विडियो तत्त्वचर्चा, रात्रिको पूज्य गुरुदेवश्रीका श्री पद्मनंदि पंचविंशति (विहार समयके) पर सीडी प्रवचन तथा विविध सांस्कृतिक कार्यक्रम इस प्रकार दैनिक क्रम सुचारुरूपसे चलता था। पूज्य गुरुदेवश्रीके प्रवचन एल.ई.डी स्क्रीन पर रखे जाते थे। सांस्कृतिक कार्यक्रममें प्रथम दिन संयुक्त संघके मुमुक्षुओं द्वारा सांस्कृतिक कार्यक्रम, दूसरे दिन सोनगढ के बालकों तथा बहिनों द्वारा सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत करनेमें आया था। तीसरे दिन पंडित श्री सुनिलभाई शास्त्री द्वारा धार्मिक क्वीझ एवं चौथे दिन पंडित श्री

नीतिनभाई शेठ द्वारा धार्मिक क्वीझका आयोजन किया गया था। जिसमें मुमुक्षुओं शांतिसे बैठकर कार्यक्रमको देखा था और प्रमुदित हुए थे।

भव्य रथोत्सव तथा कहानकुंवर–पालनाझूलन

गुरुदेवश्रीके वार्षिक जन्मोत्सवके उपलक्ष्यमें ता. ८-५-२०२४के दिन प्रातः ७.३० बजे 'धातकी-विदेहके भावि तीर्थंकरदेव'के रथोत्सवका आयोजन किया गया था। इस रथयात्रामें विभिन्न बगीओंमें कुन्दकुन्दाचार्य, जिनवाणी, गुरुदेवश्रीका स्टेच्यु और विभिन्न सजावट सह 'कहानकुंवरका पालनाझूलनका मनोहर फ्लोट सभीको गुरुभक्तिभीगा चित्त अपनी ओर आकर्षित करता था। उत्सवके चार दिन आयोजको द्वारा, भजनमंडली तथा विविध मंडलोंकी बहिनों द्वारा सांजीभक्तिका कार्यक्रम रखा गया था।

गुरु जन्मोत्सव : वैशारव शुक्ल-२ का कार्यक्रम

गुरु-जन्मजयंतिके वार्षिक मंगल दिन पर प्रातः देवशास्त्रगुरुदर्शन, पूज्य बहिनश्रीकी विडियो तत्त्वचर्चा। पश्चात् श्री सुवर्णपुरी तीर्थ पूजन विधानका समापन, सभामंडपमें पूज्य गुरुदेवश्रीका सीडी प्रवचन हुआ। पश्चात् प्रासंगिक घोषणाएँ हुई तत्पश्चात् पूज्य गुरुदेवश्रीकी मंगल बधाईका कार्यक्रम रखा गया था। जिसमें गुरुदेवश्रीको पालकी द्वारा भक्तिभावपूर्वक स्टेज पर लाया गया बादमें भजनमंडलीओंके मधुर गुरुजन्मके भक्तिगीतों सह भक्तोंने अंतरके उल्लास सह गुरुदेवश्रीकी बधाई की थी।

इस दिन ट्रस्टीओं द्वारा विविध घोषणाएँ की गई थी। जिसमें सोनगढ़में निवास करते मुमुक्षुओंके लिये हेल्पलाईनकी घोषणा की गई। प्रतिष्ठा महोत्सवकी भव्य सफलताका स्मरण करते ट्रस्टीश्री भावविभोर हो गये थे तथा इस प्रतिष्ठा महोत्सवकी मधुर यादें वर्षों तक स्मरण रहे इस हेतु सुवर्णपुरी भक्तिमाला तथा आदिपुराण और प्रतिष्ठा महोत्सवके प्रसंगोंको लेकर एक डोक्युमेन्टरी फिल्म बनाई जायेगी ऐसी घोषणा की गई। इस प्रतिष्ठा महोत्सवके समाचार का प्रतिष्ठा विशेषांकका भी प्रतिष्ठाचार्य एवं ट्रस्टीओंकी उपस्थितिमें विमोचन किया गया और पूज्य गुरुदेवश्री और पूज्य बहिनश्रीको अर्पण किया गया। बालकोंके लिये ओनलाईन पाठशाला की app का विमोचन ट्रस्टीश्री द्वारा किया गया तथा आगामी मनाये जानेवाले जन्मजयंति आदि उत्सवोंका तथा वेदी प्रतिष्ठा महोत्सवका आमंत्रण दिया गया था।

ता. ६-५-२०२४ के दिन पूज्य गुरुदेवश्रीके प्रवचन पश्चात् परमागममंदिरके पीछे पूज्य गुरुदेवश्रीके जीवन सम्बन्धित तीन प्रदर्शनी (१. पूज्य गुरुदेवश्रीका जन्मधाम-उमराला, २. पालेजमें व्यापारके समयमें शास्त्रस्वाध्याय, ३. परिवर्तनस्थल स्टार ऑफ इन्डिया) का उद्घाटन महोत्सवके आयोजकों, ट्रस्टीओं, ब्र. बहिनों तथा मुमुक्षुओंकी उपस्थितिमें किया गया था।

कहानगुरु जन्मोत्सवको भव्य और अविस्मरणीय बनानेके लिये आयोजक श्री वर्धमान-सुरेन्द्र-लींबडी-जोरावरनगरके कार्यकर्ताओंने अथाक परिश्रम किया था। समागत महेमानोंको आवास तथा भोजनकी व्यवस्थासे संतोषका अनुभव हुआ था। श्री वर्धमान-सुरेन्द्र-लींबडी-जोरावरनगरके कार्यकरोंका उत्साह प्रशंसनीय था।

(१३०)

प्रौढ व्यक्तियोंके लिए जानने योग्य प्रश्न तथा उत्तर

प्रश्न–४३ : कार्मणवर्गणा और कार्मण शरीरमें क्या फर्क है ?

उत्तर : कार्मणवर्गणाके जो परमाणु है वे अभी कर्मरूप नहीं हुए लेकिन कर्मरूप होनेकी उसमें लायकात है और जो परमाणु आठ कर्मरूप परिणमे है वे कर्मोंके समूहको कार्मण शरीर कहा जाता है।

प्रश्न–४४ : अरिहंतको कौनसे कर्म बाकी है ?–किसलिये ?

उत्तर : अरिहंतको वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र ये चार अघातिकर्म बाकी है, क्योंकि उन्हें अभी उस प्रकारका उदयभाव बाकी है।

प्रश्न–४५ : प्रथम केवलज्ञान होता है या केवलदर्शन–क्यों ?

उत्तर : केवलज्ञान और केवलदर्शन एक साथ ही (एक ही समयमें) होता है क्योंकि पूर्णदशामें क्रम पड़ता नहीं है; ज्ञान और दर्शन दोनों एकसाथ वर्तते हैं।

प्रश्न–४६ : धर्म द्रव्य चलता है तब कौन निमित्त होता है ?

उत्तर : धर्मद्रव्य स्वभावसे ही स्थिर है, वह कभी नहीं चलता है।

प्रश्न–४७ : धर्मद्रव्य कितने द्रव्योंको स्थिर होनेमें निमित्त होता है ?

उत्तर : धर्म द्रव्य स्थिर होनेमें निमित्त नहीं होता। लेकिन जीव और पुद्गलद्रव्य जब गति करते हैं तब धर्मद्रव्य निमित्त कहा जाता है। स्थितिमें अधर्मद्रव्य निमित्त कहा जाता है।

प्रश्न–४८ : संसारी जीवोंको कितने प्रकारके शरीर होते है ?

उत्तर : संसारी जीवोंको कुल पांच प्रकारके शरीर होते हैं–औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस और कार्मण। उसमेंसे किसी भी जीवको एक साथ ज्यादासे ज्यादा चार और कमसे कम दो शरीर होते हैं। एक अथवा पांच शरीर किसीको नहीं होते।

प्रश्न–४९ : दो शरीर किस जीवको होते हैं ?

उत्तर : एक भवमेंसे दूसरे भवमें गति करते जीवको अल्पकाल (एक, दो या तीन समय) कार्मण और तैजस यह दो शरीर होते हैं।

प्रश्न–५० : चार शरीर किस जीवको होते हैं ?

उत्तर : आहारकलब्धिसंपन्न छठवें गुणस्थानवर्ती मुनिको (वैक्रियिकके अतिरिक्त) चार शरीर होते हैं।

प्रश्न-५१ : जीवका परमार्थ शरीर कौनसा है ?

उत्तर : जीवका परमार्थ शरीर 'ज्ञान' है। जीवका ज्ञानशरीर कभी जीवसे अलग नहीं होता। शेष पांचों शरीर पुदगलके बने हुए अचेतन है, वह वास्तवमें जीवके नहीं है।

(१३०)

छोटे बच्चोंके लिए प्रश्नोत्तर

(नीचे दिये गये प्रश्नोंके छहढालाकी चौथी ढालमेंसे मिलेंगे।)

(१) छढाला पुस्तककी रचना ..... ने की है।

(२) ..... दर्शन, ..., ... वह मोक्षमार्गकी सीढ़ी है।

(३) ..... स्वरूप जैसा है वैसा श्रद्धान करना वह ..... है और जैसा है वैसा जानना वह ..... का लक्षण है।

(४) धर्मात्माका स्वसंवेदन ..... है ..... रूप है, मोक्षका कारण है।

(५) स्वसंवेदन होते अनंत गुणमें ..... होने लगता है।

(६) आत्माके सत्य ..... को देखनेसे ..... होता है।

(७) ..... स्वयं उस रूप परिणमित होगा अर्थात् ..... की पर्याय प्रगट होगी।

(८) सम्यग्दर्शनकी बात ..... रुचिपूर्वक सुनना।

(९) सम्यग्दर्शन-ज्ञान-आनंदकी खदान ..... में है।

(१०) आत्माका शुद्ध स्वरूप शुद्ध ..... है।

(११) सम्यग्ज्ञानके साथ ..... और ..... सुख होता है।

(१२) सम्यक्ज्ञानीको ..... दोष और ..... का भय होता नहीं है।

(१३) धर्मीको जो अल्पराग है वह ..... का ही कारण है ..... नहीं।

(१४) अपूर्व सम्यक्ज्ञान ..... चक्रको बंध करके ..... चक्रको चालु करता है।

(१५) पुण्य करे फिर भी ..... अंत नहीं होता।

(१६) ..... वह मोक्षको साधनेकी ..... कला है।

(१७) सम्यक्ज्ञान ..... मिटानेवाला परम ..... है।

(१८) जब तक ..... न हो तब तक ..... की भावना करना।

(१९) अतीन्द्रिय ज्ञान वह ..... का कारण है।

(२०) सम्यक् श्रद्धा ..... और ..... का मूल कारण कहा है।

(प्रत्येक महिने प्रश्नोत्तरके उत्तर उसी अंकमें दिये जायेंगे।)

पूज्य गुरुदेवश्रीके हृदयोद्‌गार

• ज्ञान, ज्ञानसे भी होता है तथा वाणीसे भी होता है—ऐसा अनेकान्त नहीं है, वह तो अनेकान्त-मूढ़ता है। शास्त्रमें तो ज्ञानका अभाव है; अतः ज्ञान, शास्त्रसे नहीं होता वरन् ज्ञान तो ज्ञानसे ही होता है —यह अनेकान्त है।६३६।

• प्रश्न :—आत्मा अनन्त-स्वभाववान होने पर भी उसे ज्ञानमात्र ही कैसे कहते हैं ? ज्ञानमात्र कहनेसे तो शेष अन्य धर्मोंका निषेध समझा जाता है।

उत्तर :—लक्षणकी प्रसिद्धि द्वारा लक्ष्य—आत्माका निर्णय करने हेतु ही आत्माको ज्ञानमात्र कहा है। आत्मामें अनन्तगुण हैं; उनमें ज्ञान मुख्य होनेसे वह विशेष गुण है। आत्माका तीनोंकाल लक्षण ज्ञान है; वह अन्य द्रव्योंमें नहीं है। जाननेका कार्य पर्यायसे है, ज्ञानकी प्रसिद्धि द्वारा ही जानने-वाला सो ही आत्मा —ऐसा लक्ष्यरूप आत्मा निःशंकरूपसे प्रसिद्ध होता है। व्यवहार-राग-दया-दान-भक्ति द्वारा आत्माकी प्रसिद्धि नहीं होती, क्योंकि ऐसे रागादि त्रिकाली स्वरूपमें वास नहीं करते, वे तो एक समयमात्र रहकर टल जाते हैं अतः वे निजलक्षण नहीं हो सकते। अनन्त धर्मोंमें मुख्य तो ज्ञान है, पराश्रय-बुद्धि छूटकर अन्तर्मुख होनेमें ज्ञान ही एक मात्र कारण है।६३७।

• प्रश्न :—इस लक्षणकी सिद्धिसे क्या प्रयोजन है ? लक्षणकी प्रसिद्धि किए बिना सीधा ''आत्मा अनन्त-धर्मस्वरूप है''—ऐसे केवल लक्ष्यको ही दिखाना योग्य है ?

उत्तर :—लक्षणके निर्णय बिना, लक्ष्य-आत्माका निश्चय नहीं हो सकता। अतः जिस प्रकारसे आत्माका परसे भिन्नत्व व स्वसे परिपूर्णत्व समझमें आए, उस प्रकार जिसे लक्षणका निर्णय हो उसे ही लक्ष्य—आत्माका निर्णय होता है कि 'ज्ञानमात्र सो ही आत्मा' है; देहादि अथवा रागादि आत्मा नहीं है।६३८।

• प्रश्न :—कैसा वह लक्ष्य है कि जिसकी ज्ञानकी प्रसिद्धि द्वारा, परन्तु उससे (लक्षणसे) भिन्न प्रसिद्धि होती है ?

उत्तर :—ज्ञानसे भिन्न कोई वस्तु लक्ष्य नहीं है, क्योंकि ज्ञान व आत्मा द्रव्यरूपसे अभेद है। केवल समझने हेतु पर्याय व व्यवहार-अपेक्षासे भेद बतलाया है; वस्तुमें भेद नहीं है।६३९।

३६
आत्मधर्म
जून-२०२४
अंक-१० ● वर्ष-१८

Posted at Songadh PO
Publish on 5-06-2024
Posted on 5-06-2024

Registered Regn. No. BVR-368/2024-2026
Renewed upto 31-12-2026
RNI Registration No. GUJHIN/2006/18882
वार्षिक शुल्क 9=00 आजीवन शुल्क 101=00

Printed & published by Navin Popatlal Shah on behalf of shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust and Printed at Smruti Offset, 13, Kahanwadi, Ankur School Road At-Songadh Pin-364250 and published from Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust At-Songadh, Ta. sihor, Dist. Bhavnagar Pin-364250.

Editor : Rameshchandra Vrajlal Shah.

If undelivered Please return to :—
Shri Dig. Jain Swadhyay Mandir Trust
SONGADH-364 250 (INDIA)
Phone No. (02846) 244334
Fax (02846) 244662

www.kanjiswami.org
email : contact@kanjiswami.org